जून 2020

# स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

मूल्यः ₹ 30.00

हड्डी से बनी यह बांसुरी 43,000 साल पुरानी है।

## 26 युनिस फुट - जलवायु परिवर्तन पर समझ की जननी

## 29 वायरस रोगों का इलाज भी कर सकते हैं

## 33 पसीना - नैदानिक उपकरण और विद्युत स्त्रोत

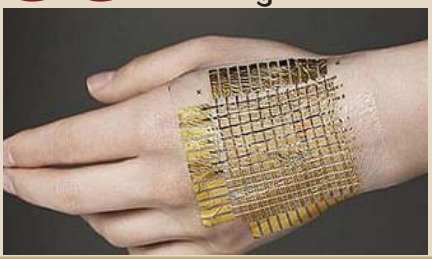

## 35 नर लीमर अपनी पूंछ से 'प्रेम रस' फैलाते हैं

## वर्ग पहेली 189

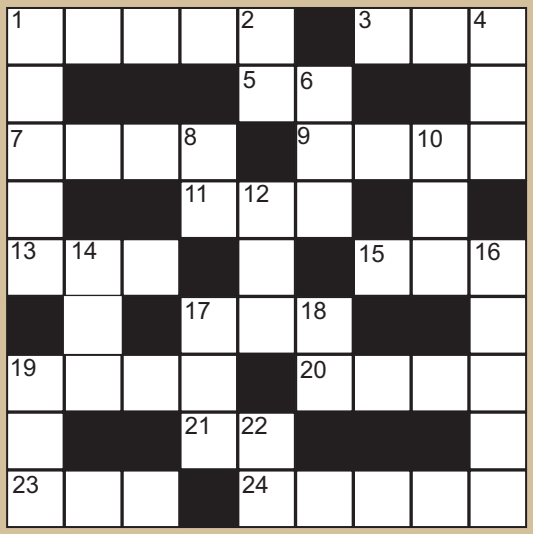

### संकेत :

**दाएं से बाएं -**

1. रोग की आशंका में अलग-थलग करना (5)
3. एक शेर पाने में पर्वतारोही लोग (3)
5. मछली की राशि (2)
7. अतिसांद्र गंधकाम्ल (4)
9. बुरा माना जाने वाला महीना (4)
11. ज़मीन में गड़ा (3)
13. सरस नाम में जीभ (3)
15. मान न मान कहने में स्टैण्डर्ड है (3)
17. वर्णमाला का चश्मा (3)
19. ऊपर कार में एक ज्यामिति उपकरण है (4)
20. आधुनिक बैटरियों की प्रसिद्ध धातु (4)
21. मनाही की राय (2)
23. चांदी (3)
24. पालन-पोषण (5)

**ऊपर से नीचे -**

1. कुपोषण का एक प्रकार (5)
2. आद्रता (2)
4. एक काल्पनिक पत्थर सोना बनाने के लिए (3)
6. सनम नज़र के अंदर चुंबकीय क्षेत्र का झुकाव (3)
8. आमदनी में नशा (2)
10. नपाई (3)
12. सफल न होने में गणित की एक क्रिया (3)
14. सुबह (3)
16. मशक में शक मिलाने से दुविधा (5)
17. अरबी जैसे पौधे (3)
18. फूल से पहले की स्थिति (2)
19. लगभग तीन घंटे का समय (3)
22. कुछ लोग मानते हैं कि तपने में ही ज्ञान का स्रोत है (2)

संपादन एवं संचालन
**एकलव्य**
*जमनालाल बजाज परिसर,*
*जाटखेड़ी, भोपाल - 462026*
*फोन : (0755) 2977770, 2977771, 72, 73*
**ई-मेल :** srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

# स्रोत

**विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स**
**जून 2020**
**वर्ष-14 अंक-06 (पूर्णांक 377)**

www.srotefeatures.in, www.eklavya.in



**संपादक**
सुशील जोशी

**सहायक संपादक**
प्रतिका गुप्ता
ज़ुबैर सिद्दिकी

**आवरण डिज़ाइन**
रोहित कोकिल

**उत्पादन सहयोग**
इंदु नायर, कमलेश यादव
राकेश खत्री

**वितरण**
झनक राम साहू



**सदस्यता शुल्क**
**300 रुपए**
**एक प्रति 30 रुपए**
**चंदे की रकम कृपया एकलव्य, भोपाल के नाम बने ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें।**



| | | |
|---|---|---|
| कोविड-19: कंटेनमेंट बनाम मेनेजमेंट | मिलिंद सोहोनी | 2 |
| कोविड-19 महामारी बनाम डिजिटल महामारी | अनुराग मेहरा | 6 |
| कोविड-19 उपचार: भगदड़ में विज्ञान दरकिनार | | 10 |
| कोरोनावायरस से उबरने का मतलब क्या है? | | 10 |
| आइंस्टाइन एक बार फिर सही साबित हुए | | 11 |
| कोविड-19 वायरस और इसके पॉलीप्रोटीन | डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन | 12 |
| कोविड-19 से निपटने में इबोला अनुभव से सीख | भारत डोगरा | 13 |
| शरीर में कोरोनावायरस की जटिल यात्रा पर एक नज़र | | 15 |
| क्या कोरोनावायरस के विरुद्ध झुंड प्रतिरक्षा संभव है? | डॉ. विपुल कीर्ति शर्मा | 16 |
| क्या कोविड-19 में मददगार होगा प्लाज़्मा उपचार? | डॉ. विपुल कीर्ति शर्मा | 17 |
| कोविड-19 टीके के लिए मानव चुनौती अध्ययन | | 18 |
| वायरस उत्पत्ति के बेबुनियाद दावे | प्रदीप | 19 |
| आपदा के बीच नए शोध और नवाचार | मनीष श्रीवास्तव | 20 |
| शरीर में कोरोनावायरस का उपद्रव | | 21 |
| प्रजातियों के बीच फैलने वाली जानलेवा बीमारियां | | 22 |
| ऐसा क्यों लगता है कि यह पहले हो चुका है? | | 24 |
| एंज़ाइम की मदद से प्लास्टिक पुनर्चक्रण | | 25 |
| युनिस फुट - जलवायु परिवर्तन पर समझ की जननी | | 26 |
| वायरस का तोहफा है स्तनधारियों में गर्भधारण | कालू राम शर्मा | 27 |
| वायरस रोगों का इलाज भी कर सकते हैं | कालू राम शर्मा | 29 |
| सरगम एक प्रागैतिहासिक तोहफा है | डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन | 31 |
| पसीना - नैदानिक उपकरण और विद्युत स्रोत | डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन | 33 |
| नर लीमर अपनी पूंछ से 'प्रेम रस' फैलाते हैं | | 35 |
| क्या सफेद अफ्रीकी गैंडों का अस्तित्व बचेगा? | डॉ. विपुल कीर्ति शर्मा | 37 |



**स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। यह मासिक संस्करण स्वयंसेवी संस्थाओं, सरकारी संस्थाओं व पुस्तकालयों, विज्ञान लेखन से संबद्ध तथा विज्ञान व समाज के रिश्तों में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के विशेष अनुरोध पर स्रोत के साप्ताहिक अंकों को संकलित करके तैयार किया जाता है। यहां प्रकाशित सामग्री का उपयोग गैर व्यावसायिक कार्यों के लिए करने हेतु किसी अनुमति की आवश्यकता नहीं है। स्रोत का उल्लेख अवश्य करें।**

# कोविड-19: कंटेनमेंट बनाम मेनेजमेंट

**मिलिंद सोहोनी**

कोविड-19 संकट से निपटने के लिए विभिन्न राष्ट्र अलग-अलग रणनीतियां बना रहे हैं। ये सभी रणनीतियां सम्बंधित राष्ट्र की क्षमता के अनुरूप तो हैं ही, साथ ही ये उनके समाज के विभिन्न तबकों के लिए लागत और अपेक्षित लाभ के प्रति चिंताओं को भी दर्शाती हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक प्रचलित तरीका कंटेनमेंट और उन्मूलन का है।

हमारे माननीय प्रधानमंत्री ने भी कोविड-19 उन्मूलन की वकालत की है और इसके लिए व्यवहार परिवर्तन और कंटेनमेंट का मार्ग बताया है। हम भी लॉकडाउन और 'हॉट-स्पॉट्स' में आक्रामक पद्धति को जारी रखेंगे। 'हॉट-स्पॉट्स' यानी सघन संक्रमण के इलाके। हॉट-स्पॉट्स में संक्रमित लोगों के मिलने-जुलने के इतिहास पर नज़र रखना और पूरे इलाके पर नियंत्रण शामिल है। उद्देश्य सभी स्थानों से बीमारी को खत्म करना है। अभी रोगग्रस्त लोगों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। हम प्रार्थना करते हैं कि यह प्लान 'ए' काम कर जाए।

**उन्मूलन, कंटेनमेंट और प्लान 'बी'**

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कंटेनमेंट के लिए दिया जाने वाला तर्क दो तथ्यों पर निर्भर है, जो कई देशों के लिए सही है। पहला तथ्य यह है कि ये देश बेहतर प्रशासित हैं और इसलिए यहां बीमारी को खत्म करना एक विकल्प है। इन देशों के पास तकनीकी क्षमता और संस्थागत अनुभव है। दूसरा, रोगियों की संभावित संख्या और अस्पतालों में बिस्तरों की संख्या लगभग बराबर है। लॉकडाउन संक्रमण को एक लंबी अवधि में बिखरा देता है और सभी रोगियों के लिए अस्पताल में देखभाल सुनिश्चित की जा सकती है। इस तरह से जोखिम का समाजीकरण हो जाएगा। इसके चलते कंटेनमेंट और उन्मूलन का मार्ग खुल जाता है। लेकिन इस बात के प्रमाण बढ़ते जा रहे हैं कि लक्षण-रहित रोगियों की संख्या लाक्षणिक रोगियों से काफी अधिक है। इस तथ्य ने कंटेनमेंट के आधार को ही कमज़ोर कर दिया है और कई देश अब सर्वथा अपारंपरिक कंटेनमेंट-उपरांत रणनीतियां बना रहे हैं।

हमारे लिए, कंटेनमेंट, जिसके साथ लॉकडाउन अपरिहार्य है, की वजह से काफी आर्थिक और कल्याण सम्बंधी नुकसान हो रहा है; साथ में उपरोक्त लाभ मिल नहीं रहे हैं। गरिमा, और रोज़गार की हानि, आर्थिक झटका और प्रवासियों पर मानसिक आघात जैसे नुकसान के रिपोर्टें बखूबी दर्ज हुई हैं।

यह अभी तक स्पष्ट नहीं है कि हमारी आक्रामक कंटेनमेंट रणनीति लागत-लाभ विश्लेषण पर आधारित है भी या नहीं। यदि कंटेनमेंट विफल हो गया है तो इन तरीकों को जारी रखने का कारण मुख्य रूप से प्रशासनिक है न कि चिकित्सकीय। फिर भी आज तक हमारे पास संक्रमण, इसके भूगोल और इसकी गतिशीलता से सम्बंधित अन्य बुनियादी सवालों के जवाब देने के लिए कोई अनुभवजन्य प्रणाली नहीं है। या तो हमारे वैज्ञानिक संस्थानों ने इस तरह का डैटा मांगा नहीं या फिर हमारे नौकरशाहों ने प्रदान नहीं किया। इस तरह के विश्लेषण और मार्गदर्शन के अभाव में राज्य अपनी-अपनी कंटेनमेंट और उन्मूलन की योजनाएं बना रहे हैं। राज्यों द्वारा अलग-अलग दिशाओं में कार्य करने से काफी लंबे समय तक राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सभी स्तरों के वियोजित और अव्यवस्थित होने की संभावना है।

हमें स्थिति 'बी' पर विचार करना चाहिए कि कंटेनमेंट विफल हो गया है। इसका एक संकेत है कि नए-नए संक्रमित समूह उभरते जा रहे हैं। या शायद यह बीमारी पहले से ही लक्षण-रहित संक्रमित व्यक्तियों (वाहकों) के माध्यम से फैल चुकी है। दोनों ही स्थितियों में गांवों, कस्बों और शहरों की एक बड़ी आबादी के देर-सबेर संक्रमित होने की आशंका है। इस नए तथ्य और भविष्य में लंबी लड़ाई के प्रबंधन के लिए एक योजना की आवश्यकता है। दुर्भाग्य से, इस संभावित परिणाम की तैयारी के लिए हमारे पास ठोस जानकारी की काफी कमी है।

तो चलिए, एक ख्याली प्रयोग की मदद से हम एक संभावित प्लान 'बी' की तैयारी करते हैं। इसके लिए सबसे पहला काम तो भोजन और आवश्यक सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना होगा जो प्लान 'ए' में भी है। अगला काम प्रतिबंधों की एक समयबद्ध योजना और भूगोल निर्धारित करना है ताकि स्वास्थ्य के जोखिमों को न्यूनतम किया जा सके। और अंतिम कार्य यह होगा कि पूरी उथल-पुथल का अर्थव्यवस्था पर और लोगों के कल्याण, खास कर कमज़ोर वर्ग के लोगों

पर हानिकारक प्रभाव कम से कम रहे। इसके लिए यह सुनिश्चित करना होगा कि अर्थव्यवस्था के कुछ हिस्से कार्यशील रहें और वेतन अर्जित होता रहे। शुक्र है कि कम से कम ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए तो इसके बारे में सोचा गया है।

**स्वास्थ्य और कल्याण**

यहां सिर्फ स्वास्थ्य और कल्याण पर ध्यान देते हैं। संक्रमण के प्रमुख संकेतक बहुत बुरे नहीं हैं। विभिन्न रिपोर्ट्स के अनुसार भारत की कुल आबादी के 8 से 30 प्रतिशत के बीच संक्रमित होने की संभावना है जो कई महीनों में फैले चक्रों में हो सकता है। यह प्रतिशत किसी समाज में व्यक्ति-से-व्यक्ति संपर्क की दर पर निर्भर करता है। ऐसे में घनी शहरी आबादियों की अपेक्षा ग्रामीण समुदाय फायदे में है। लॉकडाउन यानी संपर्क दरों में अस्थायी कटौती की मदद से, संक्रमण को स्थगित किया जा सकता है, कुल संक्रमणों की संख्या को कम नहीं किया जा सकता। किसी-किसी मामले में अधिकतम संक्रमण वाला हिस्सा (शिखर) अधिक फैला हुआ नज़र आता है। अर्थात अधिकतम संक्रमण वाली स्थिति एक लंबी अवधि में फैली होती है। अधिकांश संक्रमण हल्के-फुल्के होते हैं, और एक अनुमान के मुताबिक मात्र लगभग 10-15 प्रतिशत संक्रमित लोगों को ही अस्पताल में भर्ती करने की आवश्यकता होती है। यानी हमारी आबादी के लगभग 2 प्रतिशत लोगों को अस्पताल जाने की आवश्यकता हो सकती है। मृत्यु दर काफी कम रहने का अनुमान है - लगभग 5 प्रति 1000 जनसंख्या। तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो डब्ल्यूएचओ के अनुसार वर्ष 2018 में टी.बी. के 20 लाख नए मामले सामने आए थे (1.3 प्रति 1000 जनसंख्या) और 4 लाख लोगों की मृत्यु हुई थी।

ऐसा पहली बार हुआ है जब कोविड-19 के कारण भारत के शीर्ष 20 प्रतिशत को रुग्णता का सामना करना पड़ा जो निचले 80 प्रतिशत के लिए एक सामान्य बात है। इसके अलावा, इन दो वर्गों के जीवन के परस्पर सम्बंध और परस्पर विरोधी हितों को अभी भी पूरी तरह से समझा नहीं गया है। सबसे पहले तो इसके परिणामस्वरुप मलिन बस्तियों में लोगों की स्थिति तथा उनके कल्याण में यकायक रुचि पैदा हुई है और सामूहिक कार्यवाही के उपदेश दिए जा रहे हैं। अगली बात कि शीर्ष 20 प्रतिशत के लिए कंटेनमेंट और उन्मूलन सबसे पसंदीदा रणनीति है। यह रणनीति वैश्विक विचारों के अनुरूप है, यह टेक्नॉलॉजी-आधारित है और यह उन चिकित्सीय संसाधनों से मेल खाती है जो उस वर्ग की पहुंच में हैं। दूसरी ओर, निचले 80 प्रतिशत की प्राथमिक चिंता सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली और बुनियादी कल्याणकारी कार्यक्रमों के माध्यम से रोग का प्रबंधन करना है। दुर्भाग्य से, रोग प्रबंधन और उसकी तैयारी पर उतना ध्यान नहीं दिया गया है जितना रोग के विज्ञान, प्रसार के अनुमान और परीक्षण के तामझाम पर दिया गया।

मान लेते हैं कि हम संक्रमण के शिखर को लंबी अवधि में फैलाने में सफल हो जाते हैं, लेकिन फिर भी कोविड-19 मरीज़ों के लिए प्रति 1000 जनसंख्या पर 1 या 2 बिस्तरों की ज़रूरत होगी। यदि हम यह मानें कि अन्य मौजूदा बीमारियों के मरीज़ों के लिए प्रति 1000 जनसंख्या 1 बिस्तर की ज़रूरत होगी तो हमें कुल 2 से 3 बिस्तर प्रति 1000 जनसंख्या की ज़रूरत होगी। यानी पूरे भारत के लिए लगभग 30 लाख अस्पताली बिस्तरों की ज़रूरत होगी। विश्व बैंक का अनुमान है कि हमारे पास 0.7 से 1.0 के बीच बिस्तर उपलब्ध हैं, यानी पूरे देश में केवल 9-13 लाख बिस्तर हैं जो देखभाल के अलग-अलग स्तर के हैं। कागज़ों पर हमारे पास लगभग 10 लाख डॉक्टर और 17 लाख नर्सें हैं। लेकिन विभिन्न राज्यों में इनका वितरण असमान है और ये प्रायः शहरों में केंद्रित है। ऐसे में इन सुविधाओं तक पहुंच एवं परिवहन काफी महत्वपूर्ण होगा। वेंटीलेटर के अलावा शेष उपचार काफी सरल है। वेंटीलेटर का निर्माण अब नवाचार का विषय बन गया है जबकि भारत में कई दशकों से गरीब लोग निमोनिया से मरते रहे हैं।

**स्थानीयता**

संक्षेप में, संभावना यह है कि 80 प्रतिशत मामलों में इलाज घर या गांव या मोहल्ले के भीतर ही किया जाएगा, जब तक कि बाहरी मदद की ज़रूरत न पड़े। उम्मीद की जानी चाहिए कि वे बहुत अधिक बीमार न हो जाएं। इसलिए परिवारों को सूचना, मार्गदर्शन और सहायता देने का काम बहुत महत्वपूर्ण है और इसके कई चरण हैं।

सबसे पहले क्षेत्र-अनुसार कोविड-19 दवाइयों और अन्य सामग्री (जैसे थर्मामीटर और मास्क) के पैकेट तथा देखभाल करने के निर्देश तैयार करना होगा। इसमें महत्वपूर्ण बिंदुओं और कार्यों को शामिल किया जाना चाहिए, जैसे रोगी को निकटतम अस्पताल तक ले जाना। इनमें से कुछ परिवार वैज्ञानिक शोध हेतु डैटा भी दे सकते हैं।

इसके बाद हमें यह निर्णय लेना चाहिए गांव और वार्ड स्तर के स्वास्थ्य कार्यकर्ता किस तरह की मदद प्रदान कर सकते हैं। इसके आधार पर ऑक्सीजन मापन उपकरण और अन्य सहायक उपकरणों के लिए उपयुक्त किट और प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है। इसमें संक्रमण के समय क्वारेंटाइन और सामुदायिक संसाधनों को साझा करने सम्बंधी दिशा-निर्देश भी शामिल होना चाहिए। उपकरणों, सुविधाओं और सामग्री के मामलों में ज़िला और उप-ज़िला अस्पतालों की तैयारियों का एक स्वतंत्र मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

अंत में, बिस्तरों और सुविधाओं की उपलब्धता पर लाइव अपडेट प्रदान किए जाने चाहिए। कई गंभीर रोगियों की मौत समय पर उपयुक्त अस्पताल न मिलने के कारण हुई है। स्थानीय स्तर पर इन जानकारियों या तैयारियों का एक सामान्य विश्लेषण अभी भी सार्वजनिक रूप से उपलब्ध नहीं है। जैसे, महाराष्ट्र में उच्च मृत्यु दर और केरल या पंजाब में कम मृत्यु दर, और स्वास्थ्य प्रबंधन के तौर-तरीकों का कोई विश्लेषण उपलब्ध नहीं है।

इस सब में निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा निरीक्षण काफी महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही स्थानीय वैज्ञानिक और सामाजिक एजेंसियों और संस्थानों की सहायता और जुड़ाव काफी मददगार होगा। संकट की इस घड़ी में लंबे समय तक समन्वय, पेशेवर कौशल और संवेदना की आवश्यकता होगी। यह केवल इन्हीं वैज्ञानिक और सामाजिक एजेंसियों और संस्थाओं के पास उपलब्ध है। इस तरह की लामबंदी कई देशों में उपयोगी साबित हुई है। दुर्भाग्यवश, भारत में स्थानीय एजेंसियों की भूमिका को दोषपूर्ण विशेषज्ञ-शाही और उसके समर्थक राजनीतिक सिद्धांतों द्वारा बाधित कर दिया गया है।

शहरी क्षेत्रों का प्रबंधन प्रशासनिक दुस्वप्न से कम नहीं है। अंधाधुंध लॉकडाउन से शायद अपेक्षित स्वास्थ्य सम्बंधी परिणाम न मिलें। कुछ लोगों के लिए तो शहरी चाल में रहने से बेहतर तो अपने ग्रामीण इलाकों में रहना होगा बशर्ते कि वे संक्रमण अपने साथ न ले जाएं। इसलिए नियंत्रित प्रवास की अनुमति देते हुए यातायात प्रतिबंधों में ढील देने पर विचार किया जाना चाहिए। सार्वजनिक परिवहन को नियंत्रित तरीके और नई सारणी के साथ शुरू किया जाना चाहिए। शहर, तालुका और गांवों को प्रवासियों के परीक्षण और क्वारेंटाइन सम्बंधी निर्देश दिए जाने चाहिए।

ऐसे कई लोग होंगे जिनके पास भोजन, काम, पैसा या उचित कागज़ात तक नहीं हैं। पीडीएस और अन्य कल्याणकारी योजनाओं को संशोधित प्रक्रियाओं के तहत आवश्यक सामग्री वितरित करना चाहिए। गर्मी का मौसम नज़दीक है और ऐसे में पेयजल की समस्या शुरू हो जाएगी। संक्रमण को नियंत्रण में रखने के लिए इन मूलभूत सुविधाओं का सुचारु संचालन आवश्यक है। इसके लिए, सभी स्तरों पर आवश्यकतानुसार राज्य सरकार के कर्मचारियों को विभिन्न विभागों में तैनात किया जाना चाहिए और साथ ही इसमें ज़िम्मेदारी सौंपने सम्बंधी प्रोटोकॉल का पालन किया जाना चाहिए। हाल ही के वर्षों में सरकारी कर्मचारियों ने एक सुरक्षित जीवन व्यतीत किया है और अब उनके लिए एक आदर्श कार्य करके दिखाने का अवसर है।

**प्लान बी की स्थिति**

इस प्रकार, निचले 80 प्रतिशत लोगों के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए सुशासन, अनुमेयता और तैयारी काफी महत्वपूर्ण हैं। ये उतने ही मापन- और विश्लेषण-योग्य हैं जितने रोग के मापदंड। लॉकडाउन सीमित उद्देश्य पूरे करते हैं, और वह भी केवल तब जब वे तैयारियों में सुधार की अवधि बनें। अन्यथा, इससे केवल वेतन तथा आजीविका में बाधा आएगी और अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाएगी। ज़्यादा महत्वपूर्ण यह है कि सभी सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों (कारखानों, दफ्तरों, संस्थानों, बस डिपो, बाज़ारों, रेस्तरां तथा होटल और सम्मेलनों में) में दीर्घकालिक रूप से संपर्क दर में कमी हो। शुक्र है कि इस तरह के दिशानिर्देश अब सामने आ रहे हैं। ये सभी दिशानिर्देश प्लान बी का निर्माण करते हैं। इसके बिना कई लोगों के अनिश्चित जीवन पर भयानक प्रभाव होंगे।

लोगों को सामाजिक दूरी सीखना चाहिए, व्यवहार परिवर्तन को अपनाना चाहिए और समुदायों को बातचीत में एक नई शब्दावली अपनाना चाहिए। यह रोग इसी की मांग करता है। इसके साथ ही यह मांग करता है कि शासन उच्चतर स्तर का हो। इस नई सामान्य स्थिति को बनाने और बनाए रखने में हमारे वरिष्ठ नौकरशाह और वैज्ञानिक और उनका टीमवर्क निर्णायक कारक होगा। प्लान बी की सफलता इस सामाजिक समझ और हमारे नेताओं द्वारा प्रमुख विचारों को संप्रेषित करने की क्षमता तथा इस प्रणाली में विश्वास बनाए रखने पर निर्भर करती है।

संक्षेप में प्लान बी, राज्य की तैयारियों के रूबरू व्यक्तिगत और सामुदायिक स्तर पर व्यवहार परिवर्तन का एक नपा-तुला

प्रयोग है। यह स्वीकार करना होगा कि विभिन्न रणनीतियों के लिए लागत, लाभ और जोखिम अलग-अलग होते हैं और रोग की जनांकिकी और सुशासन को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। इसके अलावा, रोग की गतिशीलता स्वास्थ्य सम्बंधी उद्देश्यों, आर्थिक और सामाजिक व्यवधानों और समग्र कल्याण के बीच संतुलन की कई दिशाओं या कार्यक्रमों की अनुमति देती है। प्रत्येक देश को अपनी क्षमताओं और प्राथमिकताओं के आधार पर अपनी रणनीति तैयार करना चाहिए और हमें भी ऐसा ही करना चाहिए। ये सभी रणनीतियां ज़मीनी यथार्थ के अनुकूल होनी चाहिए अन्यथा अधिकांश कष्ट बेकार जाएंगे। अक्सर दक्षिण कोरिया या सिंगापुर की मिसाल दी जाती है, लेकिन हमारी स्थिति इंडोनेशिया या थाईलैंड या जर्मनी के संतुलित दृष्टिकोण के अधिक करीब है।

**नए युग के लिए सबक**

अलबत्ता यहां सीखने के लिए और भी बहुत कुछ है। अब यहां एथ्रोपोसीन युग की दुर्बलता बिलकुल स्पष्ट हैः हमारा वैश्विक समाज, विशाल विज्ञान पर उसकी निर्भरता और उस तक पहुंच में भारी असमानता। और भविष्य में हालात और बदतर हो सकते हैं। वैश्विक आर्थिक नेतृत्व तो अब वायरस द्वारा निर्मित जोखिम का प्रबंधन करने के लिए एक 'पासपोर्ट' प्रणाली का प्रस्ताव दे रहा है। इसमें राष्ट्रों के लिए पहला कदम होगा अपनी अर्थव्यवस्था के भीतर 'सुरक्षित' और 'असुरक्षित' क्षेत्रों का एक वर्गीकरण तैयार करना, जिससे 'लौटने के लिए सुरक्षित' श्रमिक एक सुरक्षित वातावरण में काम कर सकेंगे। कहा जा रहा है कि यह एक नई और सुरक्षित वैश्विक अर्थव्यवस्था के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करेगा। 'सुरक्षित' अर्थव्यवस्था में पदार्पण इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से व्यक्ति के संपर्कों का इतिहास खोजने, उन्नत परीक्षण तकनीकों और उच्च तकनीक वाले गैजेट्स पर आधारित हो सकता है। इनमें कई खामियां हैं और यह स्पष्ट नहीं है कि नई वैश्विक अर्थव्यवस्थाएं इन लागतों को वहन कर पाएंगी या नहीं। लेकिन यह निश्चित रूप से श्रमिक वर्ग के लिए आर्थिक विकल्पों को सीमित कर देगा। राजनीतिक रूप से भी यह भारत सहित कई देशों को एक निगरानी-अधीन राज्य के करीब ले जाएगा।

इस बात की पूरी संभावना है कि भारतीय अभिजात्य वर्ग इस प्रणाली में स्वयं तो शामिल होगा ही और हमें भी घसीट लेगा। इसके लिए भारत को अपनी मौजूदा प्रणाली को इसके अनुकूल ढालना होगा और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के भीतर इस वर्गीकरण को विकसित करना होगा। हमारे, औपचारिक और अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों को अपने खर्चे से शायद यह साबित करना पड़े कि वे नौकरी पाने के लिए 'सुरक्षित' हैं। यह तो जोखिमों के समाजीकरण के सर्वथा विपरीत है। निश्चित रूप से भारतीय अनौपचारिक अर्थव्यवस्था हमारी उच्च शिक्षा प्रणाली का प्रतिरूप है जिसमें हम यह चुनते हैं कि किस चीज़ का औपचारिक रूप से अध्ययन करेंगे और किसको अनदेखा कर देंगे। हमारी सार्वजनिक स्वास्थ्य नीतियां शायद अर्थव्यवस्था के निचले छोर पर और अधिक अनौपचारिकरण और विखंडन पैदा करेंगी।

**कोविड-19 संकट भारतीय वैज्ञानिक प्रतिष्ठान के लिए एक और चेतावनी है**

यह संकट याद दिलाता है कि आसपास के क्षेत्र की समस्याओं पर ध्यान देने और बुनियादी सेवाओं की वितरण प्रणालियों का निरीक्षण करने से भी विज्ञान के उद्देश्य की पूर्ति होती है। ये वास्तव में नई तकनीकों के, नवाचार के, अपने समाज को नए ढंग से संगठित करने और अपने हितों को पूरा करने के स्थल हैं। लेकिन इसके लिए विज्ञान करने के हमारे तरीकों में व्यापक परिवर्तन की ज़रूरत है। कई दशकों से हम नए टीकों और नई गाड़ियों का मुफ्त में लुत्फ उठा रहे हैं, यह जाने बिना कि इनके उत्पादन में किस तरह के अनुशासन, रचनात्मकता और सामाजिक समझ-बूझ की आवश्यकता होती है। हम काफी लंबे समय से उधार के विज्ञान पर गुज़ारा कर रहे हैं, अब उधार की बीमारी का सामना करने की भी तैयारी कर लेनी चाहिए। ***(स्रोत फीचर्स)***


# स्रोत के ग्राहक बनें, बनाएं

***वार्षिक सदस्यता***

***व्यक्तिगत 300 रुपए  संस्थागत 300 रुपए***

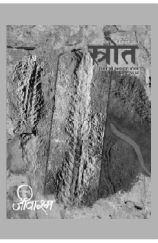

# कोविड-19 महामारी बनाम डिजिटल महामारी

**अनुराग मेहरा**

लेख की शुरूआत मैं एक गुज़ारिश के साथ करना चाहता हूं। हम अचानक ही मुश्किल और अनिश्चित दौर से घिर गए हैं। अनजाने भविष्य का डर और आशंका बेचैनी पैदा कर रहे हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि इस डर को बढ़ाने में हमारा कोई योगदान ना हो, हमें ध्यान देना चाहिए कि हम दूसरों के साथ कैसी जानकारी साझा कर रहे हैं, खासकर सोशल मीडिया और मैसेजिंग ऐप्स के ज़रिए। जब भी आप कुछ देखें या पढ़ें तो अपने आप से ये सवाल ज़रूर करें: क्या मुझे इस जानकारी पर भरोसा है? अगर यह जानकारी किसी खास विषय से सम्बंधित है तो क्या मैं इसे परखने के लिए पर्याप्त जानकार हूं? क्या दी गई जानकारी के पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत हुए हैं? क्या कहीं और भी यह बात कही गई है? विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) या स्वास्थ्य मंत्रालय इस बारे में क्या कहता है? क्या आपने व्हाट्सएप पर प्राप्त सरकारी आदेश का उनकी आधिकारिक वेबसाइट पर जारी आदेश से मिलान किया है? यदि थोड़ी भी शंका हो तो हमें संदेश साझा करने और आगे बढ़ाने से बचना चाहिए। वरना हम लोगों को गलत जानकारी देंगे जो उन्हें जोखिम में डाल सकती है।

कोविड-19 महामारी कई लोगों के लिए एक वरदान के रूप में आई है कि वे अपने अज्ञान को समझ व ज्ञान रूपी हथियार का रूप देकर, प्रायः सांस्कृतिक गर्व का मुलम्मा चढ़ाकर दुनिया के समक्ष पेश कर सकें। डिजिटल टेक्नॉलॉजी ने कई लोगों को विशेषज्ञ, विद्वान, डॉक्टर और सर्वज्ञ बना दिया है। मोबाइल फोन और कुछ अन्य माध्यमों के ज़रिए वे इंटरनेट और सोशल मीडिया का उपयोग बेतुकी और भ्रामक जानकारी फैलाने में कर रहे हैं। इनमें कई बार ऐसी बकवास भी शामिल होती है जो आज़माने वालों के लिए घातक हो सकती है।

कोरोनोवायरस (SARS-CoV-2), कोविड-19 की शारीरिक महामारी के साथ जुड़ी जानकारी की महामारी के बारे में काफी कुछ लिखा गया है। सबसे अधिक बेतुकी बातें संक्रमण के इलाज और इससे बचाव के उपायों के बारे में कही जा रही हैं। जिससे एक सवाल यह उठता है: गड़बड़ क्या है और ऐसा क्यों हो रहा है? सरल स्तर पर देखें तो, सनसनीखेज़ सामग्रियां डर और उम्मीद के चलते फैल रही हैं, और जीवित रहने के लिए हमारे दिमाग की एक प्रवृत्ति खतरों को बड़े रूप में देखने की है। ऐसा अक्सर महामारियों, आपदाओं और युद्ध के समय होता है। पर इस समय हालात को अधिक जटिल और खतरनाक बनाने वाले तीन कारक हैं: पहला, इंटरनेट पर मौजूद असत्यापित अथाह 'ज्ञान' के भंडार तक आसान पहुंच; दूसरा, डिजिटल मीडिया की बदौलत प्रसार की तीव्र गति और आसान पहुंच; और तीसरा, सामाजिक और राजनैतिक ध्रुवीकरण जो साज़िश की परिकल्पनाओं को तथा भयंकर पक्षपाती अभिमान से भरे छद्म वैज्ञानिक कथनों को जन्म देता है।

इनमें सबसे प्रचलित हैं खांसी और ज़ुकाम या सामान्य प्रतिरक्षा को बढ़ाने के लिए आज़माए जाने वाले घरेलू नुस्खों का विस्तार। इनमें से कुछ उपाय तो गर्म पानी से गरारे करने और गर्मागरम रसम पीने जैसे साधारण सुझाव हैं। इनका एक अन्य स्तर है स्व-परीक्षण; जैसे एक संदेश कहता है कि यदि आप 10 सेकंड के लिए अपनी सांस रोक सकते हैं तो आप संक्रमित नहीं हैं। इंटरनेट गलत सूचनाओं से भरा पड़ा है, जिनसे आप चलते-चलते टकरा जाएंगे। गलत सूचनाओं तक संयोगवश पहुंचना कहीं आसान है बनिस्बत प्रामाणिक जानकारी तक पहुंचने के, जिसे खोजना पड़ता है और प्रामाणिकता को परखने के लिए प्रयास करने पड़ते हैं।

गलत सूचनाएं अक्सर आधिकारिक दिखने वाले दस्तावेज़ों और सील-ठप्पों के साथ पेश की जाती हैं। इनमें से कुछ नामी पेशेवरों के हवाले से आती हैं; जैसे एक प्रसिद्ध कार्डियोलॉजिस्ट को यह कहते सुना गया था कि जिन व्यक्तियों में संक्रमण के लक्षण दिख रहे हैं उन्हें, परीक्षण किट की कमी के चलते, आठ दिनों के बाद ही परीक्षण के लिए जाना चाहिए। इसके अलावा फेसबुक, ट्विटर और सबसे कुख्यात व्हाट्सएप पर कई हास्यास्पद चीज़ें चल रही हैं। जैसे लहसुन कोरोनावायरस को ठीक कर सकता है, या हर 15 मिनट में गर्म पानी पीने से संक्रमण से बचा जा सकता है। सबसे अधिक रोमांचक सलाह शराब और गांजा का सेवन करने की है; दावा है कि दोनों ही वायरस को मार सकते हैं। अमेरिका

में काफी प्रचलित सलाह है कि 'चमत्कारी मिनरल घोल' यानी ब्लीच वायरस का सफाया कर सकता है। प्रसंगवश बता दें कि यह आपका भी सफाया हमेशा के लिए कर देगा।

मेसेजेस ने इस विचार को भी बढ़ावा दिया है कि मास्क लगाने से वायरस से पूरी तरह सुरक्षित रहा जा सकता है - यह एक खतरनाक विचार है क्योंकि यह विचार एक मिथ्या आत्मविश्वास पैदा करता है और फिर आपसे मूर्खतापूर्ण व्यवहार करवाता है। इसके चलते उन लोगों के लिए मास्क की कमी भी हो गई जिन्हें इनकी वाकई ज़रूरत थी। और अंत में, निश्चित ही यह झूठी घोषणा थी कि सरकार ने पूरे इलाके में छिड़काव करके हवा में ही वायरस के खात्मे का इंतजाम किया है।

यह तब और भी चिंताजनक हो जाता है जब ये मूर्खतापूर्ण बातें आधिकारिक नीति बन जाती हैं: स्वास्थ्य मंत्रालय सलाह देता है कि आयुर्वेदिक, यूनानी और होम्योपैथिक उपचार कोरोनोवायरस के 'लक्षणों से निपटने' में मददगार हैं! जबकि इस तरह के दावों का रत्ती भर वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है। फिर भी ये सरकार की ओर से ज़ारी किए गए हैं। विशेषज्ञों द्वारा इस पर आपत्ति उठाने पर मंत्रालय ने 'स्पष्टीकरण' दिया है कि यह सलाह 'सामान्य' वायरस संक्रमण के संदर्भ में जारी की गईं है।

यदि कोई इन 'उपचारों' को अपना ले तो परिणाम भयावह होंगे। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने कोरोनोवायरस के इलाज के लिए क्लोरोक्वीन और हाइड्रॉक्सीक्लोरोक्वीन के उपयोग की वकालत की है। जब उनसे इस बारे में सवाल किया गया तो उन्होंने जवाब दिया कि "मैं एक ऐसा आदमी हूं जो बहुत सकारात्मक सोच रखता हूं, विशेष रूप से इन दवाओं के मामले में। यह सिर्फ एक एहसास है, सिर्फ एक एहसास है। मैं एक स्मार्ट आदमी हूं।"

इन दवाओं की प्रभाविता के बारे में केवल कहे-सुने प्रमाण उपलब्ध हैं और इन्हें लेकर परीक्षण चल रहे हैं लेकिन अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा पहले ही इस 'उपचार' की पैरवी ने मुश्किल खड़ी कर दी है: इन दवाओं की जमाखोरी से इनकी उपलब्धता उन लोगों के लिए कम हो गई है जिन्हें अन्य बीमारियों के इलाज में इनकी ज़रूरत है। लोग कोरोनोवायरस से अपने को बचाने के लिए अब खुद ही इन अत्यधिक ज़हरीली दवाओं का सेवन रहे हैं, जिसके कारण एरिज़ोना और नाइजीरिया में मौतें भी हो चुकी हैं। इसी तरह के हालात भारत में भी बन सकते हैं।

साज़िश परिकल्पनाओं की भी कोई कमी नहीं है। एक प्रचलित बयान यह है कि कोरोनावायरस 5-जी मोबाइल तकनीक के परिणामस्वरूप उपजा है; यह वायरस के माध्यम से लोगों को बीमार करता है। मलेशियाई सरकार को अपने नागरिकों को आश्वस्त करना पड़ा कि यह वायरस लोगों को रक्त-पिपासु दैत्य में नहीं बदलेगा। संयुक्त राज्य अमेरिका में दक्षिणपंथी लोगों ने सोशल मीडिया पर इस तरह की पोस्ट की बाढ़ लगा दी है कि कोरोनावायरस ट्रम्प विरोधी हिस्टीरिया पैदा करने की और 'देश को अस्थिर करने' की साज़िश है। इस डर को हवा दी जा रही है कि डब्लूएचओ 'राष्ट्रों को नियंत्रित कर रहा है और कई लोगों को मारने के लिए जबरन टीके लगाए जाएंगे।' इसका एक परिणाम इस रूप में सामने आ रहा है कि दक्षिण-पंथी रुझान वाले नागरिक इस महामारी को गंभीरता से नहीं ले रहे हैं, और लापरवाही भरा व्यवहार कर रहे हैं, जैसे बाहर खाना खाना या हाथ मिलाना (यह साबित करने के लिए कि वे सख्त हैं)।

ज़्यादा गहरे स्तर पर दक्षिणपंथी लोग "वायरस के कारण और उसकी उत्पत्ति के बारे में साज़िश-सिद्धांत पेश कर रहे हैं, और इन मनगढ़ंत कहानियों का उपयोग अप्रवासियों, अल्पसंख्यकों या उदारवादी लोगों को बलि का बकरा बनाने हेतु कर रहे हैं।" चीनी मूल के अमेरिकी नागरिकों के साथ दुर्व्यवहार की खबरें तो सामने आ भी चुकी हैं क्योंकि ट्रम्प ने "चीनी वायरस" शब्द प्रचलित कर दिया है। भारत में भी, पूर्वोत्तर राज्यों के नागरिकों पर इसी तरह के नस्लवादी हमले किए गए हैं। चीन को एक दैत्य साबित करने के लिए कहा जा रहा है कि वह अपने ही नागरिकों के प्रति अमानवीय और क्रूर व्यवहार कर रहा है, और ऐसी (झूठी) रिपोर्टें पेश की जा रही हैं कि चीन संक्रमित लोगों को मार रहा है।

लेकिन यह पुराना सवाल बरकरार है: लोग इन बकवास बातों में क्यों आ जाते हैं? एक अन्य लेख में इस बात की चर्चा की गई है कि कैसे क्राउडसोर्सिंग द्वारा बकवास भी 'ज्ञान' बन जाता है। मोटे तौर पर कहा जाए तो विभिन्न कारणों से आबादी के एक बड़े हिस्से के लोगों में समीक्षात्मक कौशल की कमी के चलते कितनी भी हास्यास्पद या बकवास बात 'विश्वसनीय' बन जाती है। सही शिक्षा तक लोगों की पहुंच के अभाव और आधारभूत वैज्ञानिक सिद्धांतों की जानकारी की कमी के कारण उनके पास लगातार मिल रही इन सूचनाओं

की वैधता जांचने का कोई तरीका नहीं होता। इसके अलावा सवाल करने की मानसिकता की अनुपस्थिति, जो वैज्ञानिक स्वभाव का अंतर्निहित हिस्सा है, के कारण वे जो भी देखते, पढ़ते और सुनते हैं उसकी गहन पड़ताल नहीं कर पाते।

**यहां स्पष्ट रूप से दो तरह के परिदृश्य हैं।**

पहली श्रेणी उन लोगों की है जो तार्किकता से शुरूआत तो करते हैं लेकिन एक समय बाद प्रामाणिक से दिखने वाले नकली दस्तावेज़ों या वैज्ञानिक लगने वाले तर्कों में फंस जाते हैं। इसका एक अच्छा उदाहरण यह बयान है कि होम्योपैथी कोरोनोवायरस से लड़ने के लिए सभी अद्भुत दवाएं उपलब्ध करा रही है। इस तरह के दावे वैसी ही भाषा शैली का उपयोग करते हैं जैसी कि आधुनिक चिकित्सा में उपयोग की जाती है, जिससे होम्योपैथी चिकित्सा बिल्कुल इसके समान और इसका विकल्प लगने लगती है। यह उस छद्म विज्ञान को ढंक देती है जिस पर होम्योपैथी आधारित है। कोरोनोवायरस महामारी के इलाज और उसके टीके सम्बंधी ये दावे इस संक्रमण के खिलाफ अजेयता का भ्रम पैदा कर सकते हैं।

'जनता कर्फ्यू' के मामले में सोशल मीडिया पर एक छद्म वैज्ञानिक व्याख्या काफी प्रचलित हैः किसी एक स्थान पर कोरोनोवायरस 12 घंटे जीवित रहता है और जनता कर्फ्यू 14 घंटे का है। इसलिए सार्वजनिक स्थलों या बिंदुओं को, जहां कोरोनावायरस पड़ा रह गया होगा, यदि 14 घंटे तक छुआ नहीं जाएगा तो इससे कोरोनावायरस की शृंखला टूट जाएगी। यह ना केवल अजीबो-गरीब तर्क है बल्कि यह वायरस के जीवन काल के तथ्य के आधार पर भी गलत है। इस प्रकार के कर्फ्यू वायरस के संपर्क में आने में कमी ला सकते हैं, और आपातकालीन उपायों के हिसाब से यह एक अच्छा कदम हो सकता है, लेकिन यह नहीं होगा कि 'कोरोनावायरस की शृंखला टूट जाएगी'।

व्हाट्सएप पर एक और बेतुका तर्क दिया जा रहा है कि भारत के 130 करोड़ लोग यदि एक समय, एक साथ ताली और शंख बजाएंगे तो इतना कंपन पैदा होगा कि वायरस अपनी सारी शक्ति खो देगा। यदि कुछ ट्वीट्स की मानें तो ऐसा करके हमें पहले ही बड़ी सफलता मिल चुकी है क्योंकि "नासा SD13 तरंग डिटेक्टर ने ब्रह्माण्ड स्तरीय ध्वनि तरंग डिटेक्ट की हैं और हाल ही में बनाए गए बायो-सैटेलाइट ने दिखाया है कि COVID-19 स्ट्रेन घट रहा है और कमज़ोर हो रहा है" और ट्वीट्स के मुताबिक वह भी सामूहिक शंखनाद के कुछ ही मिनटों बाद।

इससे ज़्यादा ऊटपटांग बात कोई हो नहीं सकती। दूसरी ओर, सामाजिक दूरी का विचार, जिसे सरकारें जी-जान से बढ़ावा देने में जुटी हैं, तब हवा में उड़ गया जब कई लोग राजनेताओं के आव्हान से उत्साहित होकर संक्रमण से लड़ने वाले कार्यकर्ताओं के सम्मान में लोग ताली-थाली बजाने के लिए अपने-अपने घरों से बाहर निकल कर एक साथ जमा हो गए। लेकिन ज़मीनी हकीकत बिल्कुल अलग है, हम वास्तव में अपने आसपास इन कार्यकर्ताओं को नहीं चाहते क्योंकि इनके संक्रमित होने की संभावना है। मकान मालिकों ने एयरलाइन कर्मचारियों और यहां तक कि चिकित्सा पेशेवरों को घर खाली करने को कहा है - यह काफी निराशाजनक स्थिति दिखती है कि हम दूसरों की ज़िंदगी को महत्व नहीं देते हैं, उनकी भी जो संकट के समय जीजान से हमारी सेवा करते हैं। जिन लोगों को क्वारेंटाइन किया गया है उनके प्रति सहानुभूति में कमी और उनकी निजता पर आक्रमण तो और भी शर्मनाक है।

**हम वास्तव में सबसे भौंडा इतिहास बनते देख रहे हैं**

दूसरा, हमारे यहां कई ऐसे लोग हैं जो निहित रूप से अंधविश्वासों और अतार्किक विश्वासों के प्रति संवेदी हैं। इसके लिए विचित्र धार्मिकता से लेकर इन विश्वासों को मानने वाली संस्कृति में परवरिश जैसे कई कारण ज़िम्मेदार हैं। इन मामलों में ज्ञान और जानकारी बुज़ुर्गों, समुदाय प्रमुखों और धार्मिक गुरुओं से आंख मूंदकर प्राप्त की जाती है, उस पर सवाल नहीं उठाए जाते; दिमागों को सवाल उठाने या प्रमाण खोजने के लिए तैयार नहीं किया जाता। इसलिए इन लोगों को जो कुछ भी सूचनाएं मिलती हैं, उसे मान लेते हैं, और इससे भी अधिक तत्परता से उन सूचनाओं को मान लेते हैं जो किसी भी किस्म के अधिकारियों - राजनीतिक नेताओं, धार्मिक हस्तियों - से प्राप्त हुई हैं। 'गो कोरोना गो' का एक वीडियो बीमारी से लड़ने में एक आशावादी मनोस्थिति बनाने का अच्छा साधन हो सकता है लेकिन यह वीडियो एक मुगालता भी पैदा करता है कि कोरोनोवायरस को जाप से, खासकर सामूहिक जाप से भगाया जा सकता है।

कोरोनावायरस सम्बंधी इस तरह की बेतुकी बयानबाज़ी करने वाले अधिकतर वे लोग हैं जो धार्मिक और राष्ट्रवादी गौरव से भरे होते हैं। यह वक्त, जो महान राजनीतिक ध्रुवीकरण और तीव्र सामाजिक आक्रोश का गवाह है, ने सांस्कृतिक

श्रेष्ठता के आख्यानों से पूर्ण दंभ के उग्रवादी रूप को जन्म दिया है।

इसी के चलते, गोमूत्र का उपयोग कीटाणुनाशक के रूप में किया जा रहा है और बिना सोचे-समझे लोगों पर इसका छिड़काव किया जा रहा है। दक्षिणपंथी राजनेताओं का दावा है कि गोमूत्र और गोबर कोरोनोवायरस का इलाज कर सकते हैं, और हवन वायरस को मार सकता है। इनमें से कुछ ने विशेष सभाओं का आयोजन किया जहां आमंत्रित लोगों को गोमूत्र पीने के लिए दिया गया। कई ज्योतिष हमें बताते हैं कि हम अस्तित्व के संकट का सामना क्यों कर रहे हैं, और यह कब दूर होगा। एक अन्य दावा कहता है कि प्राचीन भारतीय योग के श्वसन का तरीका कोरोनावायरस के संक्रमण से बचा सकता है, और यह भी कि आयुर्वेदिक चिकित्सा में प्रयुक्त अश्वगंधा 'मानव प्रोटीन से कोरोना प्रोटीन को जुड़ने नहीं देगी।' इंडोनेशिया में मीडिया पोस्ट्स में दावा किया गया है कि वजू करना वायरस को मार सकता है।

जो लोग इनमें से किसी भी कथन को गंभीरता से लेते हैं और मानते हैं कि उनके पास कोरोनोवायरस से लड़ने के लिए उपाय है तो हो सकता है कि वे खुद को और दूसरों को गंभीर खतरे में डाल रहे हैं।

हमें घेरती जा रही इस अज्ञानता के और भी अधिक भयावह और दीर्घकालिक प्रभाव हैं। आक्रामक शाकाहार-श्रेष्ठता के उन्माद में स्वनामधन्य ज्ञान उड़ेला जा रहा है: कोरोनावायरस की उत्पत्ति चीन के 'मांस बाज़ार' से हुई, जहां मारे गए जंगली जानवरों की विभिन्न प्रजातियां एक साथ होती हैं, जिससे वायरस एक प्रजाति से होते हुए दूसरी प्रजाति और अंततः मनुष्य में आ गया। यह बात मांसाहार की कटु आलोचना के रूप में इस्तेमाल की जा रही है। मांस खाने वालों को दोष देते हुए कतिपय सभ्यता की श्रेष्ठता के दावे किए जा रहे हैं और सभ्यता के घोर अनुयायी मांग कर रहे हैं कि चीनी राष्ट्रपति कोरोनावायरस की प्रतिमा से क्षमा याचना करें कि उन्होंने मांस खाया। संक्रमित मटन बाज़ार दिखाने वाले वीडियो भावनाओं को और भड़का रहे हैं। इस प्रकार कोरोनावायरस मांस खाने वालों के खिलाफ प्रकृति का प्रतिशोध बन गया है। इससे भारत में मुर्गियों की कीमत बहुत कम हो गई है, और यह उद्योग आर्थिक संकट झेल रहा है।

सिर्फ अनुशंसित वेबसाइटों (जैसे डब्ल्यूएचओ) से जानकारी प्राप्त करने की सलाह और गुज़ारिश किसी भी तरह से लोगों को गलत सूचना मानने और आगे बढ़ाने से रोक नहीं रही है। हमें यह याद रखना चाहिए कि बहुत सी गलत सूचनाएं जानबूझकर बरगलाने के लिए प्रचारित की जाती हैं, अक्सर दक्षिणपंथी सांस्कृतिक लोगों द्वारा। जब तक हम इस सूचना की महामारी के "प्रसार की शृंखला" को नहीं तोड़ेंगे तब तक यह जारी रहेगी।

लिहाज़ा, डिजिटल मीडिया कई मायनों में उन मासूम लोगों के लिए एक उपहार है जो उनको बताई गई किसी भी बकवास पर, और उसे रचने वालों पर यकीन कर लेते हैं। फेसबुक से लेकर यूट्यूब तक के तमाम प्लोटफार्म, जिन पर कोई भी कुछ भी कह या लिख सकता है, वास्तव में इन्हें उपयोग करने वाले सर्वज्ञाताओं (चाहें नादान हों या किसी मत के) के लिए मुफ्त में उपलब्ध हथियार की तरह है जिसे किसी पर भी चलाया जा सकता है। ऐसा नहीं है कि पहले के ज़माने में दुनिया में किसी तरह की मूर्खता नहीं थी लेकिन मूर्खता को सर्वव्यापी बनाने के साधन अनुपस्थित थे, जिससे किसी बेतुकेपन के निर्माण और प्रसार की गति सीमित थी।

बड़ी टेक कंपनियां गलत सूचना के प्रसार को रोकने की कोशिश कर रही हैं लेकिन इस बात की संभावना बहुत कम है कि वे खुद के बनाए गए विशालकाय जाल को नियंत्रित कर पाएंगी। आधुनिक तकनीक और दुनिया के असमीक्षात्मक, रूढ़िवादी सोच की जुगलबंदी हमें यह याद दिलाती है कि जो समाज अंधविश्वास को बढ़ावा देता है वह छद्म विज्ञान में लौट जाता है और तार्किकता को कम करता है। इस परिस्थिति का उपयोग सांस्कृतिक और राजनीतिक लड़ाई में हथियार के रूप में किया जाता है। ***(स्रोत फीचर्स)***

• विज्ञान • विज्ञान शिक्षण • बच्चों और शिक्षकों के साथ अनुभव • कहानी
• शिक्षा शास्त्र एवं शिक्षण विधि • पुस्तक अंश / पुस्तक समीक्षा • भाषा शिक्षण

***वार्षिक सदस्यता*** **300 रुपए**

**सदस्यता शुल्क एकलव्य, भोपाल के नाम ड्राफ्ट या मनीऑर्डर या मल्टीसिटी चेक से भेजें।**

# कोविड-19 उपचार: भगदड़ में विज्ञान दरकिनार

कोविड-19 के लिए दो मलेरिया रोधी दवाओं, क्लोरोक्वीन और हाइड्रॉक्सीक्लोरोक्वीन, के उपयोग को लेकर काफी राजनैतिक बहस हो रही है। राजनेताओं के दावों के परिणामस्वरूप, फ्रांसीसी चिकित्सकों पर कोविड-19 के गंभीर रोगियों पर हाइड्रॉक्सीक्लोरोक्वीन का उपयोग करने का दबाव बनाया जा रहा है। 4.6 लाख लोग एक याचिका पर हस्ताक्षर भी कर चुके हैं कि इसे व्यापक रूप से उपलब्ध करवाया जाए। इसकी वकालत की अगुआई करने वाले डिडिएर राउल्ट एक विवादास्पद और राजनीति से जुड़े सूक्ष्मजीव विज्ञानी हैं।

हाल ही में फ्रांस के राष्ट्रपति इमैनुएल मैक्रों से राउल्ट की मुलाकात ने मामले को हवा दी है। फ्रांसीसी जनमत संग्रह संस्थान के अनुसार फ्रांस की 59 प्रतिशत जनता क्लोरोक्वीन को कोरोनावायरस के खिलाफ प्रभावी मानती है। यहां तक कि मैक्रों की आर्थिक नीति का विरोध करने वाले समूह 'येलो वेस्ट' के 80 प्रतिशत लोग भी इसके समर्थन में हैं।

फ्रांस के कई चिकित्सकों और विशेषज्ञों द्वारा इस दवा को नुस्खे में न लिखने पर निरंतर धमकियां मिल रही हैं और इसे हासिल करने के लिए झूठी डॉक्टरी दवा पर्चियों का भी उपयोग किया जा रहा है।

जहां तक हाइड्रॉक्सीक्लोरोक्वीन का सवाल है, कोविड-19 के खिलाफ इसकी प्रभाविता के कई अध्ययनों ने नकारात्मक या अस्पष्ट परिणाम दिए हैं। इसके सेवन से हृदय गति में गड़बड़ सहित कई अन्य दुष्प्रभाव हो सकते हैं। राउल्ट के अध्ययनों में सकारात्मक परिणामों को लेकर उनके अध्ययनों की सीमाओं और पद्धति सम्बंधी समस्याओं की व्यापक रूप से आलोचना की जा रही है। इसमें उन्होंने केवल 42 रोगियों को शामिल किया और उसमें से भी उन्होंने खुद चुना कि किसको दवा देनी है किसका प्लेसिबो से काम चलाना है। ऐसे अध्ययन का नैदानिक शोध में कोई महत्व नहीं है। इंटरनेशनल सोसायटी फॉर माइक्रोबियल कीमोथेरपी की शोध पत्रिका *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एंटीमाइक्रोबियल एजेंट्स* में प्रकशित इस पेपर से स्वयं सोसायटी ने असहमति जताई है। दूसरा पेपर बिना समकक्ष समीक्षा के प्रकाशित हुआ था।

राउल्ट के अनुसार अस्पताल में सभी कोविड-19 रोगियों को हाइड्रॉक्सीक्लोरोक्वीन और एज़िथ्रोमाइसिन का मिश्रण दिया गया और मृत्यु दर में काफी कमी आई थी।

ऐसे में यह बात तो तय है कि राउल्ट को अपने राजनीतिक सम्बंधों से काफी फायदा मिला है। फ्रांस के पूर्व उद्योग मंत्री ने भी एक टीवी साक्षात्कार में राउल्ट का समर्थन किया है। इसके अलवा उनको चिकित्सा जगत में भी उच्च-स्तरीय समर्थन मिला है। उनके द्वारा चलाई गई ऑनलाइन याचिका में चिकित्सा क्षेत्र से जुड़े लोगों, चिकित्सा अकादमियों के प्रमुख चिकित्सकों और यहां तक कि फ्रांस के पूर्व स्वास्थ्य मंत्री के हस्ताक्षर भी शामिल हैं।

लेकिन फ्रांस के कई वैज्ञानिक इस हानिकारक दवा की प्रभाविता के अल्प प्रमाण के बावजूद उपयोग को लेकर चिंतित हैं। 7 युरोपीय देशों में हाइड्रोक्सीक्लोरोक्वीन और कई अन्य उपचारों की प्रभाविता का अध्ययन करने के लिए एक रैंडम परीक्षण शुरू किया गया है। पेरिस स्थित सेंट लुइस अस्पताल में संक्रामक रोग विभाग के पूर्व अध्यक्ष बर्गमन के अनुसार इस परीक्षण के लिए उनको लोग नहीं मिल रहे हैं चूंकि वे हायड्रॉक्सीक्लोरोक्वीन के अलावा कोई और उपचार लेना ही नहीं चाहते। बर्गमन का मानना है कि यह 'चिकित्सा भीड़तंत्र' है जो सत्य की खोज को मुश्किल कर रहा है। ***(स्रोत फीचर्स)***

# कोरोनावायरस से उबरने का मतलब क्या है?

दिन-ब-दिन कोरोनोवायरस संक्रमितों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। अच्छी बात यह है कि कोरोनावायरस से संक्रमित अधिकांश मरीज़ इस संक्रमण से उबर जाते हैं। लेकिन संक्रमण से उबरना मात्र बेहतर महसूस करने की तुलना में थोड़ा पेचीदा मामला है।

जब कोई व्यक्ति वायरस के संपर्क में आता है तो शरीर संक्रमण से लड़ने के लिए एंटीबॉडी बनाना शुरु करता है। ये एंटीबॉडी वायरस को नियंत्रित करती हैं और उसे अपनी प्रतिलिपियां बनाने से रोकती हैं। जब एंटीबॉडी वायरस को रोकने में सफल हो जाती हैं, तो मरीज़ में रोग के लक्षण

दिखना कम होने लगते हैं और व्यक्ति बेहतर महसूस करने लगता है। यदि सब ठीक-ठाक चले तो प्रतिरक्षा तंत्र सारे वायरसों को पूरी तरह नष्ट कर देता है। जब कोई संक्रमित व्यक्ति स्वास्थ्य पर बगैर किसी दूरगामी प्रभाव या अक्षमता के ठीक हो जाता है तो कहते हैं कि वह उबर गया है।

सामान्य तौर पर एक बार जब कोई व्यक्ति वायरस के संक्रमण से उबर जाता हैं तो शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली इस वायरस को याद रखती है। यदि यही वायरस दोबारा हमला करता है तो एंटीबॉडीज़ शुरुआत में ही इस वायरस का सफाया शुरू कर देती हैं। यानी व्यक्ति में उस वायरस के विरुद्ध प्रतिरक्षा विकसित हो जाती है; टीके इसी सिद्धांत पर काम करते हैं।

लेकिन अफसोस कि हमारा प्रतिरक्षा तंत्र एकदम सटीक नहीं होता। मम्स (गलसुआ) जैसे कई रोगों के वायरस के खिलाफ प्रतिरक्षा समय के साथ खत्म हो जाती है और भविष्य में फिर संक्रमण की संभावना बन जाती है। चूंकि यह कोरोनावायरस नया है इसलिए वैज्ञानिक अभी नहीं जानते कि जो लोग COVID-19 से उबर गए हैं उनके शरीर में प्रतिरक्षा कितने समय तक टिकी रहेगी।

लेकिन सवाल यह है कि ठीक-ठीक कब माना जाएगा कि कोई मरीज़ कोरोनावायरस के संक्रमण से ठीक हो चुका है। सीडीसी के अनुसार किसी व्यक्ति को कोरोनावायरस के संक्रमण से उबरा हुआ तब माना जाएगा जब वह शारीरिक रूप से और जांच, दोनों मानदंडों पर खरा उतरेगा। शारीरिक सत्र पर, बुखार कम करने वाली दवाएं बंद करने के बाद लगातार तीन दिन तक मरीज़ को बुखार नहीं आना चाहिए, खांसी और सांस की तकलीफ सहित अन्य लक्षणों में सुधार दिखना चाहिए, और लक्षण दिखना शुरू होने के बाद कम से कम सात दिन बीत जाने चाहिए। सीडीसी के अनुसार इसके अलावा, मरीज़ के 24 घंटे के अंतराल में दो बार किए गए परीक्षण के नतीजे नकारात्मक होना चाहिए। जब शारीरिक रूप से और परीक्षण दोनों स्थितियां इस बात की पुष्टि करें कि व्यक्ति कोरोनावायरस से संक्रमित नहीं हैं तभी किसी व्यक्ति को आधिकारिक तौर पर इस संक्रमण से उबरा हुआ माना जाएगा।

यहां एक और सवाल उठता है कि क्या इस संक्रमण से उबर चुके मरीज़ आगे मददगार साबित हो सकते हैं? जैसा कि डॉक्टर कह रहे हैं कि इस संक्रमण से ठीक हो चुके लोगों में इस बात का पता लगाया जाए कि क्या उनमें इसके विरुद्ध प्रतिरक्षा विकसित हुई है? यदि उनमें कोरोनावायरस के विरुद्ध प्रतिरक्षा विकसित हुई है तो ये लोग अन्य संक्रमित व्यक्तियों की देखभाल में मदद कर सकते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

# आइंस्टाइन एक बार फिर सही साबित हुए

**अ**ल्बर्ट आइंस्टाइन के सामान्य सापेक्षता सिद्धांत ने एक और परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है। शोधकर्ता लगभग 3 दशकों से आकाशगंगा के बीच स्थित विशालकाय ब्लैक होल (Sagittarius A*) के सबसे निकटतम ज्ञात तारे की कक्षा का अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने इस तारे की कक्षा में मामूली से परिवर्तन का पता लगाया है और यह परिवर्तन पूरी तरह आइंस्टाइन के सिद्धांत से मेल खाता है।

*एस2* नाम का यह तारा 16 वर्ष में अपनी दीर्घवृत्ताकार कक्षा का एक चक्कर पूरा करता है। यह पिछले वर्ष ब्लैक होल के सबसे नज़दीक, 20 अरब किलोमीटर की दूरी, से गुज़रा था। यदि ऐसे में न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत को माना जाए तो इसे अपनी कक्षा में पहले जैसे कायम रहना था लेकिन ऐसा हुआ नहीं। बल्कि इसके पथ में मामूली सा परिवर्तन देखने को मिला। टीम ने यह अध्ययन युरोपियन सदर्न ऑब्ज़र्वेटरी के एक विशाल टेलिस्कोप की मदद से किया है। इसकी रिपोर्ट को *एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रोफिज़िक्स* में प्रकाशित किया है। इस घटना को श्वार्ज़स्चाइल्ड पुरस्सरण का नाम दिया है। सामान्य सापेक्षता की भविष्यवाणी के अनुसार आने वाले समय में यह अंतरिक्ष में स्पाइरोग्राफ नुमा फूल का पैटर्न अपनाएगा।

शोधकर्ताओं का मानना है कि *एस2* की विस्तृत ट्रैकिंग की मदद से सापेक्षता के कई अन्य परीक्षणों में मदद मिलेगी। इसकी सहायता से ब्लैक होल के आसपास उपस्थित डार्क मैटर और छोटे ब्लैक होल सहित कई अध्ययन किए जा सकेंगे और यह समझा जा सकेगा कि इस तरह के विशालकाय पिंड कैसे बनते और विकसित होते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

# कोविड-19 वायरस और इसके पॉलीप्रोटीन

**डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन**

रोज़ाना हमें कोविड-19 के बारे में कुछ ना कुछ पता चलता रहता हैः यह कितनी आसानी से लोगों को संक्रमित कर रहा है और व्यक्ति से व्यक्ति में फैल रहा है, और कैसे वैज्ञानिकों और चिकित्सा विशेषज्ञों ने इसके प्रसार के खिलाफ जंग छेड़ रखी है। हम यह भी सुनते हैं कि कैसे यह बैक्टीरिया से अलग है और क्यों एंटीबायोटिक दवाइयां इसका सफाया करने में कारगर नहीं हो सकतीं।

आखिर वायरस और बैक्टीरिया में अंतर क्या है? बैक्टीरिया सजीव होता है। हर बैक्टीरिया कोशिका में पुनर्जनन करने की प्रणाली होती है। यदि आप एक बैक्टीरिया कोशिका को लें और उसे पोषक तत्वों से युक्त घोल में डालें तो यह उसमें स्वयं वृद्धि कर सकता है, और विभाजित होकर अपनी संख्या वृद्धि कर सकता है। कोशिकाओं में मौजूद जीन (जीनोम, जो डीएनए अणुओं से बना होता है और जिसमें निहित जानकारी संदेशवाहक अणु आरएनए के लिए एक संदेश के रूप में लिखी होती है) में निहित संदेश प्रोटीन नामक कार्यकारी अणु में परिवर्तित हो जाता है जो बैक्टीरिया को पनपने और संख्या वृद्धि करने में मदद करता है। कोरोनावायरस में डीएनए नहीं होता लेकिन आरएनए होता है; दूसरे शब्दों में कहें तो वे केवल संदेश पढ़ सकते हैं, संदेश लिख नहीं सकते। इसलिए ये 'मृतप्राय' होते हैं जो स्वयं वृद्धि और पुनर्जनन नहीं कर सकते, इसके लिए उन्हें सहायता की दरकार होती है। यह सहायता वे 'मेज़बान कोशिकाओं' को संक्रमित करके लेते हैं और लाखों की संख्या में वृद्धि करते हैं। बिना सहायक मेज़बान कोशिका के वायरस एक बेकार वस्तु के समान है।

## पॉलीप्रोटीन रणनीति

संक्रमण होने पर इस आरएनए की 33,000 क्षारों की शृंखला अमीनो अम्लों की एक लंबी शृंखला में तब्दील हो जाती है। चूंकि इस लंबी शृंखला में कई प्रोटीन होते हैं इसलिए इसे 'पॉलीप्रोटीन' अनुक्रम कहा जाता है। तो हमें इस पूरी पॉलीप्रोटीन शृंखला का विश्लेषण करना होता है, संक्रमण के लिए ज़िम्मेदार प्रोटीन पता करना होता है, उसे अलग करना होता है और संक्रमण में इन प्रोटीन की भूमिका पता करना होता है। (वैज्ञानिक पॉलीप्रोटीन को सिंगल रीडिंग फ्रेम कहते हैं जिसमें कई ओपन रीडिंग फ्रेम होते हैं। ये फ्रेम एक स्टार्ट कोड के साथ शुरु और एक स्टॉप कोड के साथ समाप्त होते हैं। और इनमें से प्रत्येक में वह प्रोटीन होता है जिसे मेज़बान कोशिका द्वारा व्यक्त किया जाना है)। यह युक्ति वायरल जीनोम को सघन रखती है और आवश्यकता पड़ने पर ही प्रोटीन व्यक्त करती है। यह कुछ हद तक उस किफायती व्यक्ति की तरह है जो बैंक में अपना पैसा फिक्स्ड डिपॉज़िट करके रखता है और वक्त पर ज़रूरत के हिसाब से पैसा निकालता है। वायरस की ज़रूरत मेज़बान को संक्रमित करके अपनी संख्या बढ़ाने की है। यदि ज़रूरत नहीं है, तो खर्च नहीं, संक्रमण नहीं, और संख्या में वृद्धि नहीं!

यू चेन और उनके साथी *जर्नल ऑफ मेडिकल वायरोलॉजी* में प्रकाशित अपनी हालिया समीक्षा में बताते हैं कि कोविड-19 की पॉलीप्रोटीन शृंखला में आरएनए-आधारित जीनोम और उप-जीनोम होते हैं, जो स्पाइक प्रोटीन (S), झिल्ली प्रोटीन (M), आवरण प्रोटीन (E) और न्यूक्लियोकैप्सिड प्रोटीन (N, जो वायरस की कोशिका के केन्द्रक की सामग्री का आवरण होता है) के लिए कोड करते हैं। ये सभी प्रोटीन वायरस के निर्माण के लिए आवश्यक होते हैं। इसके अलावा, खास संरचना के लिए ज़िम्मेदार प्रोटीन और अतिरिक्त सहायक प्रोटीन भी होते हैं जिन्हें गैर-निर्माणकारी प्रोटीन (NSP) कहा जाता है। इनमें से 16 प्रोटीन वायरस के संक्रमण और वृद्धि में मदद करते हैं।

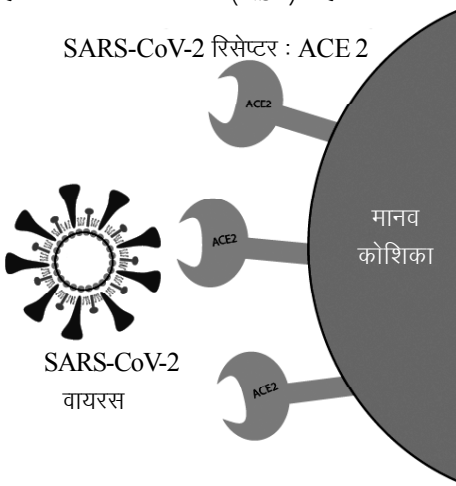


इस तरह हमारे पास वायरस के प्रोटीन्स की एक खासी तादाद उपलब्ध है, जिनके निर्माण को बाधित करने या रोकने के लिए हम कई

संभावित अणुओं और दवाइयों का परीक्षण कर सकते है। वास्तव में, पिछले महीने प्रकाशित हुए कई अध्ययनों में ऐसा ही करने की कोशिश की गई है।

इनमें से एक अध्ययन में वायरस के प्रमुख एंज़ाइम RDRp के निर्माण को लक्ष्य करने का प्रयास किया था, जिसका निर्माण *रेमेडेसेविर* दवा द्वारा रोका गया था। अमेरिका, जर्मनी और चीन के तीन अध्ययनों में वायरस के स्पाइक (S) प्रोटीन को बनाने वाले एंज़ाइम (जिसे 3CLpro या Mpro कहा जाता है) का निर्माण रोकने के तरीकों का विवरण है। और यू चेन ने उपरोक्त पेपर में वायरस के पॉलीप्रोटीन के 16 से अधिक गैर-निर्माणकारी प्रोटीन (NSP) सूचीबद्ध किए हैं, जिनका निर्माण संभावित दवाइयों द्वारा रोका जा सकता है। (बोस्टन के डॉ. पांडुरंगाराव का मत है कि इनमें से भी एंज़ाइम NSP12 एक महत्वपूर्ण व लाभदायक लक्ष्य होगा)।

इस संदर्भ में यहां भारतीय शोधकर्ता तनीगैमलाई पिल्लैयार के काम का उल्लेख महत्वपूर्ण होगा। पिल्लैयार 2013 से जर्मनी स्थित युनिवर्सिटी ऑफ बॉन में औषधी रसायनज्ञ के रूप में कार्यरत हैं। साल 2016 में *जर्नल ऑफ मेडिसिनल केमिस्ट्री* में प्रकाशित शोध पत्र में उन्होंने SARS-CoV के मुख्य एंज़ाइम कीमोट्रिप्सीन-नुमा सिस्टीन प्रोटीएज़ (3CLpro या Mpro) की 3-डी मॉडलिंग करके सम्बंधित वायरस TGEV (ट्रांसमिसेबल गैस्ट्रोएंटेराइटिस वायरस) का पता लगाया और उसके एक्स-रे क्रिस्टल संरचना की मदद से उन्होंने पता लगाया कि यह एंज़ाइम वायरस की संरचना में ताला-चाभी तरीके से जुड़ता है। इस आणविक मॉडलिंग के बाद उन्होंने ऐसी दवा की पड़ताल की जो इस बंधन को निष्क्रिय कर सके और SARS-CoV को संक्रमित करने से रोक सके। अनुमान था कि लगभग 160 ज्ञात दवाएं यह कार्य करने में विभिन्न दक्षता के साथ कारगर हो सकती हैं। दवाओं की यह सूची क्रिस्टल संरचना की जानकारी के 3-4 साल पहले सुझाई गई थी, जिसे पिल्लैयार और उनके साथियों ने जनवरी 2020 में *ड्रग डिस्कवरी टुडे* में प्रकाशित, अपने हालिया शोध पत्र में अपडेट किया है।

भारत को पिछले 90 वर्षों से कार्बनिक और औषधीय रसायन के क्षेत्र में खासा अनुभव हासिल है। भारत गुणवत्तापूर्ण औषधि निर्माण, और 1970 पेटेंट अधिनियम के बाद से निर्यात में कुशलता पूर्वक कार्य कर रहा है। आज हमारी दक्षता सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में न केवल ज़रूरत के मुताबिक अणुओं को संश्लेषित करने की है बल्कि कंप्यूटर मॉडलिंग की मदद से बैक्टीरिया और वायरस के प्रोटीन को लक्ष्य करने में, होमोलॉजी मॉडलिंग, ड्रग डिज़ाइन, दवाओं के नए उपयोग खोजने वगैरह में भी है।

CSIR ने इस जानलेवा वायरस का मुकाबला करने वाले रसायन और तरीकों को विकसित करने की ज़िम्मेदारी ली है, और हमें पूरी उम्मीद है कि वे निकट भविष्य में अवश्य सफल होंगे! ***(स्रोत फीचर्स)***

# कोविड-19 से निपटने में इबोला अनुभव से सीख

**भारत डोगरा**

जिस समय सम्पूर्ण विश्व का ध्यान कोविड-19 से लोगों को बचाने पर केंद्रित है, उस समय पश्चिमी अफ्रीका में वर्ष 2014-15 में उभरे इबोला संक्रमण प्रकोप के समय समाधान के लिए उठाए गए कदमों को याद कर उनसे महत्त्वपूर्ण सबक लेने की आवश्यकता है।

उस समय स्वास्थ्य व्यवस्था के केंद्र में इबोला प्रकोप होने के कारण अन्य बीमारियों की उपेक्षा हुई थी व उनके कारण होने वाली मौतों की संख्या में अच्छा-खासा इजाफा हो गया था और यह आंकड़ा इबोला सम्बंधी मौतों से ज़्यादा था। अतः स्वास्थ्य व्यवस्था के प्रयासों को इबोला पर आवश्यकता से अधिक केंद्रित करने पर प्रश्न चिंह लग गया था। इस सबक को याद रखना चाहिए क्योंकि कई देशों की कमज़ोर स्वास्थ्य व्यवस्था को कोविड-19 पर ही केंद्रित किया जा रहा है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इबोला अनुभवों को साझा करते हुए 30 मार्च 2020 को अपने बयान में कहा कि जब स्वास्थ्य व्यवस्थाओं पर बोझ बढ़ता है तो वैक्सीन से रोकी जा सकने वाली एवं अन्य उपचार योग्य बीमारियों से होने वाली मौतों का आंकड़ा अत्यधिक बढ़ता है। वर्ष 2014-15 में इबोला प्रकोप के कारण स्वास्थ्य व्यवस्थाएं बहुत दबाव में आ गईं थीं और इस दौरान खसरा, मलेरिया, एड्स और तपेदिक से होने वाली मौतों का आंकड़ा बहुत तेज़ी से बढ़ गया था और इन कारणों से जो अतिरिक्त मौतें हुईं वे इबोला के कारण हुईं

मौतों से अधिक थी।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जिन अध्ययनों का हवाला दिया है उनमें जे. डब्ल्यू एल्सटॉन और उनके द्वारा किया अध्ययन प्रमुख है। 2017 के *दी हैल्थ इम्पैक्ट्स ऑफ 2014-15 इबोला आऊटब्रेक* शीर्षक से प्रकाशित अध्ययन के अनुसार इबोला प्रकोप का प्रभाव गहरा और बहुआयामी था। बढ़ते दबाव के कारण स्वास्थ्य व्यवस्था बुरी तरह चरमरा गई थी, जिसका प्रभाव स्वास्थ्यकर्मियों की मौतों, उपलब्ध संसाधनों को सिर्फ एक ओर मोड़ देने और कुछ स्वास्थ्य सेवाओं को बंद कर देने में स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था।

इबोला प्रभावित क्षेत्रों में मातृ प्रसव देखभाल में 80 प्रतिशत की कमी आ गई थी और छोटे बच्चों की मलेरिया की की स्थिति में संस्थागत देखभाल में 40 प्रतिशत तक की कमी आई थी। टीकाकरण कार्यक्रम बुरी तरह प्रभावित हुए थे और बाल सुरक्षा में काफी कमी आई थी। रोगियों की संख्या में वृद्धि और मृत्यु दर बढ़ गई थी और औसत आयु में काफी कमी आई। इस अध्ययन में यह भी कहा गया था कि लोगों को शीघ्रता से ज़रूरी स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध करवाने के लिए एवं स्वास्थ्य व्यवस्थाओं को पुनर्स्थापित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समर्थन की आवश्यकता थी।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा जिस दूसरे अध्ययन का ज़िक्र किया गया वह ए. एस. पार्पिया और उनके साथियों का वर्ष 2016 में *इफेक्ट ऑफ रिस्पांस टू2014-15 इबोला आऊटब्रेक ऑन डेथ्स फ्रॉम मलेरिया, एचआईवी-एड्स एंड ट्यूबरोक्लोसिसः वेस्ट अफ्रीका* शीर्षक से प्रकाशित अध्ययन था। इस अध्ययन के अनुसार पश्चिमी अफ्रीका में वर्ष 2014-15 में इबोला से निबटने के लिए स्वास्थ्य व्यवस्थाओं पर इतना बोझ डाल दिया गया कि गुयाना, लाइबेरिया और सिएरा लियोन में मलेरिया, एचआईवी/एड्स और टीबी जैसी गंभीर बीमारियों के निदान एवं उपचार सम्बंधी स्वास्थ्य सेवाओं में बहुत कमी आ गई थी।

इस अध्ययन ने पाया था कि इबोला प्रकोप के दौरान स्वास्थ्य देखभाल में 50 प्रतिशत की कमी के कारण इन तीन देशों में मलेरिया, एचआईवी/एड्स व तपेदिक से होने वाली मौतों की संख्या मे बहुत वृद्धि हुई।

*लैंसेट इन्फेक्शियस डीसीज़* में प्रकाशित मैथ्यू वैक्समेन एवं साथियों के अध्ययन में बताया गया है कि जो मरीज़ इबोला संक्रमण से प्रभावित नहीं थे पर तीन इबोला उपचार इकाइयों में दाखिल किए गए थे उनकी मृत्यु दर 8.1 प्रतिशत यानी बहुत अधिक पाई गई।

इस अध्ययन पर अपनी टिप्पणी देते हुए रोबर्ट कोलेबुंडर्स और उनके साथियों ने कहा कि उनके द्वारा किए गए शोध से भी यही सत्यापित हुआ है कि गुयाना में इबोला उपचार इकाई में भर्ती गैर इबोला संक्रमित मरीज़ों में 6.4 प्रतिशत की उच्च मृत्यु दर पाई गई थी। उन्होंने इसके लिए ज़िम्मेदार कई कठिनाइयों की ओर ध्यान दिलाया। किन मरीज़ों में इबोला संक्रमण का प्रभाव नहीं है यह परीक्षण करने में बहुत लंबा समय लगा और मरीज़ों को बिना उपचार के लंबे वक्त तक रहना पड़ा। इस दौरान इबोला के प्रकोप के चलते स्वास्थ्य व्यवस्थाओं पर बढ़ते बोझ के कारण कई सामान्य चिकित्सा सेवाएं रोक दी गई जिसके चलते मरीज़ों को दूसरी जगहों पर स्थानांतरित करना भी असंभव हो गया।

कोलेबुंडर्स और उनके साथियों ने *लैंसेट इन्फेक्शियस डीसीज़ेस* में प्रकाशित अध्ययन में सिफारिश की थी कि इबोला प्रकोप के दौरान अन्य गंभीर बीमारियों से ग्रसित (इबोला संक्रमित मरीज़ों के अतिरिक्त) मरीज़ों की देखभाल के लिए समुचित मानदंडों के अनुसार स्वास्थ्य सेवाएं सुनिश्चित की जानी चाहिए जिससे इबोला ट्रीटमेंट सेंटर से मरीज़ों को स्थानांतरित करने की आवश्यकता पड़ने पर उनके लिए समुचित देखभाल की व्यवस्था संभव हो सके।

इस प्रकार विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि इबोला प्रकोप के दौरान एक ओर बहुत से व्यक्ति गैर-इबोला गंभीर रोगों की वजह से मौत के मुंह में चले गए क्योंकि उन्हें आधुनिक या औपचारिक स्वास्थ्य देखभाल उपलब्ध नहीं हो सकी। दूसरी ओर, बहुत से गैर-इबोला संक्रमित मरीज़ इबोला उपचार केंद्रों में पंहुच भी गए तो उन्हें वहां कई कारणों से समुचित स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध नहीं हुईं जिसके कारण ऐसे मरीज़ों की मृत्यु दर में अनावश्यक वृद्धि हुई।

वर्तमान कोविड-19 के सकंट के समय विभिन्न देश तपेदिक, कैंसर, हृदय रोग जैसी गंभीर बीमारियों के मरीज़ों और विभिन्न चोटों, मानसिक रोगियों और प्रसव सम्बंधी आपात सेवाओं की ज़रूरत को सामान्य समय की तरह पूरा करने में असमर्थ हैं। ज़रूरी नियमित दवाइयों की अनुपलब्धता भी एक गंभीर संकट है जो बहुत तेज़ी से बढ़ रहा है। अतः इन चुनौतियां से लड़ने के लिए शीघ्र ही उचित रणनीति व कदमों की आवश्यकता है। ***(स्रोत फीचर्स)***

# शरीर में कोरोनावायरस की जटिल यात्रा पर एक नज़र

**चीन** में नए कोरोनावायरस के शुरुआती मामलों के आधार पर डॉक्टरों को पता था कि यह वायरस फेफड़ों पर हमला करता है। लेकिन हाल ही में गंभीर लक्षण वाले ऐसे रोगियों के मामले सामने आए हैं जहां गुर्दे और हृदय जैसे अन्य अंगों को भी क्षति पहुंची है।

स्टेटन आइलैंड स्थित कोरोनावायरस उपचार अस्पताल के सह-निदेशक डॉ. एरिक सियो-पेना के अनुसार किसी रोगी में कमज़ोर प्रतिरक्षा के कारण जब फेफड़ों पर इस वायरस का अत्यधिक दबाव बनता है तो यह शरीर के दूसरे हिस्सों में फैलने लगता है। कोरोनावायरस सांस नली के माध्यम से फेफड़ों तक और फिर शरीर में पहुंचता है। यह श्वसन कोशिकाओं की सतह पर पाए जाने वाले एंज़ाइम से जुड़कर किसी व्यक्ति को संक्रमित करता है। शरीर में पहुंचने के बाद यह रक्तप्रवाह में मिलकर शरीर के अन्य अंगों तक पहुंचकर उन्हें क्षति पहुंचाने लगता है।

कोविड-19 के गंभीर रोगियों के इलाज के दौरान उनके हृदय की मांसपेशियों में संक्रमण पाया गया। *जर्नल ऑफ अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन - कार्डियोलॉजी* में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार वुहान में हर 5 कोविड-19 ग्रस्त रोगियों में से 1 में हृदय क्षति के प्रमाण सामने आए हैं।

हृदय और फेफड़ों की सतह पर उपस्थित ACE2 नामक प्रोटीन इस वायरस को कोशिकाओं में प्रवेश करने में मदद करता है। इसी तरह का एंज़ाइम आहार नाल वगैरह में भी होता है। यानी यह वायरस अन्य अंगों पर भी हृदय और फेफड़ों के समान हमला कर सकता है। एरिक के अनुसार जिन रोगियों में श्वसन सम्बंधी लक्षण नहीं पाए जाते उनमें इसके लक्षण आहार नाल में मिलने की संभावना होती है।

इसके अलावा, कुछ सामान्य मामलों में लीवर में एंज़ाइम का उच्च स्तर भी इस वायरस की घुसपैठ का द्योतक हो सकता है। जब लीवर की कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं तो ये एंज़ाइम रक्तप्रवाह में मिल जाते हैं। अच्छी बात है कि लीवर खुद को पुनर्निर्मित कर सकता है इसलिए इसमें वायरस के कारण कोई दीर्घकालिक क्षति नहीं होती है।

वैसे वायरस द्वारा किसी अंग को प्रत्यक्ष क्षति पहुंचने के अलावा व्यक्ति का प्रतिरक्षा तंत्र भी क्षति के लिए ज़िम्मेदार होता है। इस स्थिति में प्रतिरक्षा कोशिकाओं का एक झुंड, जिसे सायटोकाइन तूफान कहते हैं, रक्तप्रवाह में जारी होता है और पूरे शरीर के स्वस्थ ऊतकों को नष्ट करने लगता है। ऐसे में फेफड़ों को गंभीर क्षति पहुंचती है और कई अंगों के खराब होने का खतरा रहता है। कुछ कोविड-19 रोगियों के मस्तिष्क को भी सायटोकाइन तूफान ने प्रभावित किया है। इसके अलावा कई अन्य लक्षणों में गंध और स्वाद संवेदना का नष्ट होना भी देखा गया।

वैसे एरिक के अनुसार सिर्फ अत्यधिक गंभीर मामलों में ही स्थायी नुकसान की संभावना होती है। अपने काम के दौरान उनके सामने कई ऐसे मामले आए हैं जिनमें रोगी पूरी तरह से ठीक भी हुए हैं। विशेष रूप से लीवर और गुर्दे कुछ समय के लिए अपना काम बंद करने के बाद वापस सामान्य स्थिति में आ सकते हैं। लगभग इसी तरह का प्रभाव निमोनिया के दौरान फेफड़ों में भी देखा गया है।

यह तो अभी तक मालूम नहीं है कि वायरस से उबरने वाले लोगों ने कितनी प्रतिरक्षा विकसित की है लेकिन वे पूर्ण प्रतिरक्षा विकसित नहीं भी करते हैं तो भी संक्रमण से बचे रहने का मतलब यह होगा कि अगली बार यदि संक्रमण होता है तो कई अंगों पर पड़ने वाला प्रभाव कम होगा। ***(स्रोत फीचर्स)***


**विज्ञान से जुड़ी नवीनतम जानकारी अब ऑनलाइन उपलब्ध**

**लिंक पर जाएं: www.srotefeatures.in**

**www.eklavya.in**

# क्या कोरोनावायरस के विरुद्ध झुंड प्रतिरक्षा संभव है?

डॉ. विपुल कीर्ति शर्मा

दुनिया भर में तेज़ी से फैलते कोविड-19 के कारण हम सब घरों में कैद होकर रह गए हैं। कोरोना वायरस के संक्रमण के प्रारंभ में युनाइटेड किंगडम ने लोगों के एकत्रित होने पर रोक तथा कठोर सोशल डिस्टेंसिंग लागू नहीं किया था। यद्यपि चिकित्सा समुदाय के अनेक लोग रोक न लगाने से आश्चर्यचकित थे, फिर भी अधिकारियों की योजना पूरी तरह बंद की बजाय क्रमिक प्रतिबंधों के माध्यम से वायरस को दबाने की थी। प्रयास था कि प्राकृतिक तरीके से झुंड प्रतिरक्षा विकसित की जाए। झुंड प्रतिरक्षा को सामुदायिक प्रतिरक्षा भी कहते हैं क्योंकि प्रतिरक्षा क्षमता पूरे समुदाय में विकसित होती है।

### क्या है झुंड प्रतिरक्षा?

झुंड प्रतिरक्षा तब होती है जब एक समुदाय के अनेक लोग एक संक्रमणकारी बीमारी के प्रतिरोधी हो जाते हैं जिसके कारण रोग फैलने से रुक जाता है। झुंड प्रतिरक्षा दो प्रकार से प्राप्त हो सकती है - प्रथम, जब समुदाय के अनेक व्यक्ति बीमारी से संक्रमित हो जाते हैं और कुछ समय में प्रतिरक्षा तंत्र बगैर किसी दवाई या वैक्सीन के बीमारी को हराकर व्यक्ति को ठीक कर देता है।

झुंड प्रतिरक्षा प्राप्त करने का दूसरा तरीका है टीकाकरण यानी वैक्सिनेशन। इस तरीके में रोगजनक परजीवी को प्रयोगशाला में रसायनों या अन्य तरीकों से इतना कमज़ोर कर दिया जाता है कि वह प्रजनन और रोग उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाता है। फिर उसे पोषक के शरीर में डाला जाता है। परजीवी के रसायन (प्रोटीन) पोषक के शरीर में प्रतिरक्षा तंत्र को एंटीबॉडी बनाने के लिए उत्तेजित तो करते हैं पर बीमार नहीं कर पाते। इस प्रकार शरीर परजीवी से लड़ने के तरीके विकसित कर लेता है और बीमार भी नहीं होता है। कुछ प्रकार के वैक्सीन में बीमारी के बेहद हल्के लक्षण (जैसे बुखार वगैरह) दिख सकते हैं। जब जनसंख्या के बड़े भाग में वैक्सिनेशन हो जाता है तो बीमारी पूर्ण रूप से खत्म हो जाती है क्योंकि परजीवी को कोई संवेदी पोषक नहीं मिलता और हमें झुंड प्रतिरक्षा मिल चुकी होती है।

कुछ बीमारियों के खिलाफ झुंड प्रतिरक्षा बेहतर कार्य करती है तो कुछ के लिए यह तरीका फेल हो जाता है। चेचक को मानव इतिहास की सबसे भयानक बीमारियों में से एक माना जाता है। वैक्सिनेशन से चेचक के सफाए के बारे में एडवर्ड जेनर के शोध प्रकाशन के लगभग 200 वर्षों बाद 1980 में विश्व स्वास्थ संगठन ने विश्व को चेचक मुक्त घोषित किया क्योंकि विश्व की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग वैक्सिनेट हो गया था।

अनेक प्रकार के वायरल एवं बैक्टीरियल इन्फेक्शन एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलते हैं। यह श्रृंखला तब टूटती है जब अधिकांश लोग संक्रमित नहीं होते या संक्रमण नहीं फैलाते। यह उन लोगों की रक्षा करने में मदद करता है जो वैक्सिनेशन नहीं करवाते हैं या जिनका प्रतिरक्षा तंत्र कमज़ोर है या वे आसानी से संक्रमित हो जाते हैं। आसानी से संक्रमित होने वाले व्यक्तियों में - बूढ़े, बच्चे, नवजात शिशु, गर्भवती महिलाएं, कमज़ोर प्रतिरक्षा या कुछ गंभीर स्वास्थ्य स्थितियों वाले लोग हो सकते हैं।

### झुंड प्रतिरक्षा के आंकड़े

कुछ बीमारियों के लिए झुंड प्रतिरक्षा तब प्रभावी हो सकती है जब किसी आबादी में 40 प्रतिशत लोग रोग के लिए प्रतिरोधी हो जाएं। लेकिन ज़्यादातर मामलों में आबादी के 80-95 प्रतिशत लोग प्रतिरोधी होने पर ही बीमारी को फैलने को रोका जा सकता है।

उदाहरण के लिए खसरा (मीज़ल्स) की प्रभावी झुंड प्रतिरक्षा विकसित करने के लिए 20 में से 19 व्यक्तियों को खसरे का टीका लगना चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि अगर एक बच्चे को खसरा होता है तो उसके आसपास की आबादी में सभी को वैक्सिनेट करना होगा ताकि बीमारी को फैलने से रोका जा सके। यदि खसरे से पीड़ित बच्चे के आसपास अधिक लोग बगैर वैक्सिनेशन के होंगे तो बीमारी अधिक आसानी से फैल सकती है क्योंकि कोई झुंड प्रतिरक्षा नहीं है। यानी एक निश्चित प्रतिशत ऐसे लोगों का होना चाहिए जो बीमारी को आगे फैलने से रोकेंगे। इस प्रतिशत को झुंड प्रतिरक्षा का न्यूनतम स्तर या थ्रेशोल्ड कहते हैं।

झुंड प्रतिरक्षा कुछ बीमारियों के लिए काम करती है। नार्वे के लोगों ने वैक्सिनेशन एवं प्राकृतिक प्रतिरक्षा के तरीके से स्वाइन फ्लू के लिए आंशिक झुंड प्रतिरक्षा विकसित कर ली है। 2010 तथा 2011 में नार्वे में यह देखा गया कि इन्फ्लूएंज़ा के कारण कम मौतें हुई थीं क्योंकि आबादी का बड़ा हिस्सा इसके प्रति प्रतिरोधी हो गया था।

हम कुछ बीमारियों के लिए वैक्सीन लगाकर झुंड प्रतिरक्षा विकसित करने में मदद कर सकते हैं। झुंड प्रतिरक्षा हमेशा समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति की रक्षा नहीं कर सकती है लेकिन बीमारी फैलने से रोकने में मदद कर सकती है।

**कोविड-19 व झुंड प्रतिरक्षा**

सोशल डिस्टेंसिंग और बार-बार हाथ धोना ही वर्तमान में स्वयं के परिवार और आसपास के लोगों में कोविड-19 बीमारी के वायरस के संक्रमण को रोकने का तरीका है। ऐसे अनेक कारण हैं जिनसे कोविड-19 के विरुद्ध झुंड प्रतिरक्षा फिलहाल तुरंत विकसित नहीं की जा सकती -

1. कोविड-19 के लिए वैक्सीन बनने में एक साल लगने की संभावना है। तो झुंड प्रतिरक्षा के लिए वैक्सिन का उपयोग फिलहाल संभव नहीं है।

2. कोविड-19 के उपचार के लिए एंटीवायरल और अन्य दवाओं की खोज के लिए वैज्ञानिक प्रयासरत है।

3. वैज्ञानिकों को पक्के तौर पर यह ज्ञात नहीं है कि कोविड-19 बीमारी से ठीक हो गए व्यक्ति को फिर से यही बीमारी हो सकती है या नहीं।

4. गंभीर संक्रमण में व्यक्ति मर भी सकते हैं।

5. कोरोना वायरस से कुछ तो बीमार पड़ जाते हैं जबकि अन्य व्यक्तियों को कुछ नहीं होता इसका कारण क्या है यह हमें पक्के तौर पर नहीं पता।

6. एक साथ अनेक लोग संक्रमित होने से अस्पताल एवं स्वास्थ्य सेवाएं चरमरा सकती हैं।

वैज्ञानिक कोरोना वायरस के विरुद्ध वैक्सीन बनाने के लिए शोध कर रहे हैं। यदि हमारे पास वैक्सीन आ जाता है तो हम भविष्य में इस वायरस के विरुद्ध झुंड प्रतिरक्षा विकसित करने में सक्षम हो सकते हैं। यह तभी संभव होगा जब विश्व की अधिकांश आबादी वैक्सिनेट हो जाए। केवल वे व्यक्ति जो चिकित्सकीय कारणों से वैक्सिनेट नहीं हो सकते उन्हें छोड़कर जवानों, बच्चों सभी को वैक्सिनेट होना होगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

# क्या कोविड-19 में मददगार होगा प्लाज़्मा उपचार?

**डॉ. विपुल कीर्ति शर्मा**

तेज़ी से फैल रहे कोविड-19 संक्रमण को रोकने के लिए वैज्ञानिक उपाय खोजने में लगे हैं। हाल ही में भारत की शीर्ष संस्था आईसीएमआर ने कोविड-19 मरीज़ों के इलाज के लिए प्लाज़्मा उपचार के ट्रायल की अनुमति दी है। चीन में कोविड-19 संक्रमण से ठीक हुए रोगियों के रक्त में कोविड-19 के विरुद्ध एंटीबॉडीज़ से रोगियों का इलाज करने की संभावना देखी जा रही है। भारत में आईसीएमआर द्वारा विभिन्न संस्थाओं को क्लीनिकल ट्रायल्स प्रारंभ करने का आमंत्रण देने का कारण यह जानना है कि कोविड-19 संक्रमण के विरुद्ध बनी एंटीबॉडी रोगग्रस्त व्यक्तियों के इलाज में कितनी असरदार साबित होती हैं।

बैक्टीरिया, फफूंद, वायरस जैसे रोगाणुओं के लिए हमारा शरीर एक आदर्श आवास है। सर्दी या फ्लू के वायरस पर तो हमारा शरीर ज़्यादा ही मेहरबान प्रतीत होता है। जब रोगाणु हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं तो बी तथा टी प्रतिरक्षा कोशिकाएं उन्हें नष्ट करने में लग जाती हैं।

बी-प्रतिरक्षा कोशिकाएं रोगाणुओं पर उपस्थित एंटीजन से जुड़कर प्लाज़्मा कोशिकाओं का निर्माण करती है। प्लाज़्मा कोशिकाएं विभाजित होकर असंख्य प्लाज़्मा कोशिकाएं बनाती हैं जो तेज़ी से एंटीबॉडीज़ का निर्माण करने लगती है। चूंकि ये एंटीबॉडी खास रोगाणुओं के विरुद्ध बनती हैं इसलिए दूसरी बीमारी के रोगाणुओं के विरुद्ध कार्यवाही नहीं कर सकती है। जब शरीर में प्रतिरक्षा कोशिकाओं को एक अपरिचित एंटीजन का पता लगता है तो प्लाज़्मा कोशिकाओं को पर्याप्त रूप में एंटीबॉडी उत्पन्न करने में दो सप्ताह तक का समय लग सकता है। अत्यधिक मात्रा में निर्मित एंटीबॉडीज़ को रक्त रोगाणुओं के आगमन स्थानों पर पहुंचाता है जहां एंटीबॉडीज़ रोगाणुओं को बांधकर उन्हें अक्रिय कर देती हैं जिन्हें भक्षी कोशिकाएं खा जाती हैं।

एंटीबॉडीज़ एकत्रित के लिए पूरी तरह ठीक हो चुके

व्यक्ति के शरीर से लगभग 800 मिलीलीटर रक्त निकाला जाता है और रक्त से प्लाज़्मा को अलग किया जाता है। प्लाज़्मा अलग होने के बाद लाल रक्त कोशिकाओं को सलाइन में मिलाकर वापस दानदाता के शरीर में डाल दिया जाता है। प्लाज़्मा में से खून का थक्का जमाने वाले प्रोटीन फाइब्रिनोजन को अलग कर सिरम प्राप्त किया जाता है। सिरम में केवल एंटीबॉडीज़ पाई जाती हैं। सिरम को अल्पकाल के लिए 40 डिग्री सेल्सियस पर तथा ज़्यादा समय तक संग्रहित करने के लिए कुछ रसायन मिलाकर -60 डिग्री सेल्सियस पर रखा जाता है। एक व्यक्ति से प्राप्त प्लाज़्मा में इतनी एंटीबॉडीज़ होती हैं कि 4 मरीज़ों का इलाज हो सकता है।

गंभीर संक्रमण से ग्रस्त रोगियों के प्लाज़्मा में अनेक प्रकार के सूजन पैदा करने वाले रसायन भी पाए जाते हैं जो फेफड़ों को गंभीर क्षति पहुंचा सकते हैं। ऐसी अवस्था में उनके प्लाज़्मा से अवांछित रसायनों को पृथक कर निकाल दिया जाता है। प्लाज़्मा उपचार का उपयोग केवल मध्यम या गंभीर संक्रमण वाले रोगियों पर किया जाता है।

कारगर टीके या इलाज के अभाव में कोविड-19 रोगियों के लिए प्लाज़्मा उपचार तकनीक लड़ाई में आशा की किरण है। चीन, दक्षिण कोरिया, अमेरिका और ब्रिटेन जैसे कई देशों में प्लाज़्मा उपचार पर प्रयोग चल रहे हैं और भारत भी इस दौड़ में पीछे नहीं रहना चाहता। ***(स्रोत फीचर्स)***

# कोविड-19 टीके के लिए मानव चुनौती अध्ययन

**को**विड-19 से निपटने के लिए दुनिया भर में तरह-तरह के प्रयास किए जा रहे हैं। अब हाल ही में शोधकर्ता इससे निपटने के लिए मानव चुनौती अध्ययन करना चाहते हैं।

मानव चुनौती अध्ययन में किसी रोग के लिए दवा, टीके वगैरह की प्रभाविता जांचने के लिए जानबूझ कर लोगों को उस रोग से संक्रमित किया जाता है और फिर उन पर अध्ययन किया जाता है। इसलिए यह अध्ययन जोखिम पूर्ण हो सकता है, और साथ में लोगों की सुरक्षा और नैतिकता का सवाल भी पैदा करता है।

कई चिकित्सा समूह और कंपनिया कोरोनावायरस का टीका विकसित करने के प्रयास में लगी हुई हैं। इन प्रयासों में पहले तो हज़ारों स्वस्थ लोगों को या तो टीका या प्लेसिबो (छद्म-टीका) लगाया जाता है और फिर नज़र रखी जाती है कि इनमें से कौन से व्यक्ति संक्रमित हुए। लेकिन इस प्रक्रिया में काफी वक्त लगता है, इसलिए वेटलिस्ट ज़ीरो नामक अंगदान समूह के कार्यकारी निदेशक जोश मॉरिसन *वन डे सूनर* नामक मानव चुनौती अध्ययन करना चाहते हैं जिसमें वे स्वस्थ, युवा वालंटियर्स को जानबूझ कर कोविड-19 से संक्रमित कर टीके की कारगरता जांचना चाहते हैं। सैद्धांतिक रूप से मानव-चुनौती परीक्षण में कम वक्त लगता है। गौरतलब है कि *वन डे सूनर* कोरोना वायरस के लिए टीका तैयार करने वाले किसी समूह, कंपनी या वित्तीय संस्थान से सम्बद्ध नहीं है।

मॉरिसन अपने अध्ययन में अधिक से अधिक वालंटियर शामिल करना चाहते हैं। और अध्ययन में उन्हीं वालंटियर्स को शामिल किया जाएगा जो परीक्षण के लिए स्वस्थ होंगे। वैसे इस अध्ययन के लिए लगभग 1500 वालंटियर्स समाने आए हैं। जो लोग इस परीक्षण का हिस्सा बनने के लिए तैयार हैं वे युवा हैं और शहरी क्षेत्रों में रहते हैं, और कोरोनोवायरस महामारी से निपटने के लिए कुछ कर गुज़रने की ख्वाहिश रखते हैं। इनमें से कई लोग इस अध्ययन के जोखिमों से परिचित हैं लेकिन यदि इससे टीका जल्दी उपलब्ध हो सकता है तो वे इतना जोखिम उठा सकते हैं। वैसे इसके पहले भी इन्फ्लूएंज़ा और मलेरिया जैसी बीमारियों के लिए मानव-चुनौती अध्ययन किए जा चुके हैं।

लंदन स्थित वेलकम की टीका कार्यक्रम प्रमुख चार्ली वेलेर का कहना है कि कोरोनावायरस के खिलाफ टीका विकसित करने के लिए मानव-चुनौती परीक्षण की नैतिकता और क्रियांवयन पर चर्चा चल रही है। लेकिन अब तक यह स्पष्ट नहीं है कि मानव-चुनौती परीक्षण से वास्तव में टीका जल्दी तैयार करने में मदद मिलेगी। बहरहाल शोधकर्ताओं को पहले यह निर्धारित करने की आवश्यकता है कि कैसे सुरक्षित तरीके से लोगों को वायरस से संक्रमित किया जाएगा, और कैसे और किस हद तक अध्ययन को नैतिक तरीके से किया जाएगा ताकि वालंटियर्स के स्वास्थ्य को कोई खतरा न हो। ***(स्रोत फीचर्स)***

# वायरस उत्पत्ति के बेबुनियाद दावे

**प्रदीप**

हाल ही में फ्रांस के वायरस विज्ञानी और एड्स-वायरस (एचआईवी) की खोज के लिए 2008 में चिकित्सा के नोबेल पुरस्कार विजेता ल्यूक मॉन्टेनियर का दावा है कि सार्स-कोव-2 वायरस मानव निर्मित है। उनके अनुसार यह वायरस चीन की प्रयोगशाला में एड्स-वायरस के खिलाफ वैक्सीन बनाने के प्रयास के दौरान असावधानीवश लीक हुआ है।

ल्यूक ने यह दावा कर पूरी दुनिया के विज्ञान और राजनीतिक खेमों में हलचल मचा दी है। ल्यूक ने एक फ्रेंच चैनल के साथ इंटरव्यू में कहा है कि "कोरोना वायरस के जीनोम में एचआईवी सहित मलेरिया के कीटाणु के तत्व पाए गए हैं, जिससे शक होता है कि यह वायरस प्राकृतिक रूप से पैदा नहीं हो सकता। चूंकि वुहान की बायोसेफ्टी लैब साल 2000 के आसपास से ही कोरोना वायरसों को लेकर विशेषज्ञता के साथ रिसर्च कर रही है इसलिए यह नया कोरोना वायरस एक तरह के औद्योगिक हादसे का नतीजा हो सकता है।"

ल्यूक आगे कहते हैं कि "अगर हम इस वायरस के जीनोम (आनुवंशिक संरचना) को देखें तो यह आरएनए की एक लंबी शृंखला है। इस शृंखला में चीन के आणविक जीव वैज्ञानिकों ने एचआईवी की कुछ छोटी-छोटी कड़ियां जोड़ दी हैं। और इन्हें छोटा रखने का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इससे एंटीजेन साइट्स (वायरस की बाहरी सतह जिससे इसका मुकाबला करने वाली हमारे शरीर की एंटीबॉडीज़ जुड़ती हैं) में बदलाव किया जा सकता है जिससे वैक्सीन बनाने में मदद मिलती है। यह काम बहुत सटीक है। किसी घड़ीसाज़ के काम जैसा बारीक!"

गौरतलब है कि ल्यूक जीव विज्ञानी जेम्स वाटसन की तरह एक विवादित शख्सियत रहे हैं। इससे पहले उनके दो शोध पत्रों पर काफी विवाद हुआ था। एक में उन्होंने डीएनए से विद्युत-चुंबकीय तरंगें निकलने और दूसरे में एड्स और पार्किंसन रोग को ठीक करने में पपीते के फायदे पर बात की थी। उनके इन शोध पत्रों की वैज्ञानिक समुदाय में काफी आलोचना हुई थी। इसी तरह वे होम्योपैथी के बड़े हिमायती माने जाते हैं जबकि वास्तविकता में होम्योपैथी छद्मवैज्ञानिक चिकित्सा प्रणाली है। ल्यूक यह भी मानते हैं कि बचपन में लगाए जाने वाले टीकों से ऑटिज़्म होता है जबकि इस धारणा के विरुद्ध काफी पुख्ता वैज्ञानिक प्रमाण मौजूद हैं।

दुनिया भर के कई वैज्ञानिकों ने ल्यूक के दावे का खंडन किया है और कहा है कि ऐसे अवैज्ञानिक दावों से उनकी वैज्ञानिक साख तेज़ी से नीचे गिर रही है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि आज ल्यूक जैसे वैज्ञानिक विज्ञान के मूल आधारों - तर्क, युक्ति, विवेक, अनुसंधान, प्रयोग और परीक्षण - को नष्ट करने का काम कर रहे हैं। इसे विवेक पर विवेकहीनता का हमला भी कह सकते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन कह चुका है इस बात का कोई सबूत नहीं है कि यह वायरस किसी लैब में तैयार किया गया है। इससे पहले प्रतिष्ठित पत्रिका *नेचर मेडिसिन* में प्रकाशित एक शोध पत्र से पता चलता है कि यह वायरस कोई जैविक हथियार न होकर प्राकृतिक है। वैज्ञानिकों का कहना है कि अगर यह वायरस लैब निर्मित होता तो इंसानों की जानकारी में आज तक पाए जाने वाले कोरोनावायरस की जीनोम शृंखला से ही इसका निर्माण किया गया होता, मगर वैज्ञानिकों द्वारा जब कोविड-19 के जीनोम को अब तक के ज्ञात जीनोम शृंखलाओं से मैच किया गया तब वह एक पूर्णतया प्राकृतिक और अलग वायरस के तौर पर सामने आया है। नॉवेल कोरोनावायरस का जीनोम चमगादड़ और पैंगोलिन में पाए जाने वाले बीटाकोरोना वायरस के समान है।

ल्यूक की पूरी थ्योरी एक ही आधार पर टिकी है कि सार्स-कोव-2 नामक वायरस के पूरे जीनोम में एचआईवी-1 के कुछ न्यूक्लिओटाइड अनुक्रम पाए गए हैं। बाकी का बयान इसी आधार पर ल्यूक की परिकल्पना है। अब इस आधार को कैसे समझा जाए?

*युरोपियन साइंटिस्ट* में प्रकाशित एक लेख में ल्यूक की इस थ्योरी का पूरा विश्लेषण करते हुए नॉवेल कोरोना वायरस यानी सार्स-कोव-2 और एचआईवी-1 के जेनेटिक कोड्स बताकर समझाया गया है कि दोनों में कोई सीधी समानता नहीं है। यानी सार्स-कोव-2 में एचआईवी का कोई भी अंश नहीं मिला है। तमाम वैज्ञानिक बारीकियों के ज़रिए समझाने के बाद इस विश्लेषण में लिखा गया है कि नॉवेल कोरोना

वायरस कहां से पैदा हुआ, इसके बारे में संभावित और तार्किक परिकल्पनाएं पहले ही आ चुकी हैं।

लगातार कई भ्रामक थ्योरीज़ सामने आ रही हैं लेकिन अगर आप सच्चाई जानना चाहते हैं तो *नेचर* पत्रिका के उस लेख को पढ़ें जिसमें नए कोरोनावायरस के जीनोम को लेकर विस्तार से चर्चा है और दूसरे कोरोनावायरसों के साथ इसके अंतर को स्पष्ट रूप से समझाया गया है।

अमेरिका के सर्वोच्च चिकित्सा विशेषज्ञों में शामिल डॉ. एंथनी फॉकी कह चुके हैं कि "यह वायरस जानवरों की प्रजातियों से मनुष्यों में पहुंचा है।" दूसरी ओर, विश्व स्वास्थ्य संगठन के रीजनल इमरजेंसी डायरेक्टर रिचर्ड ब्रेनन ने कहा था कि 'यह वायरस प्रथम दृष्ट्या ज़ुओनोटिक है यानी जंतु प्रजातियों से फैला है।" पेरिस के वायरस वैज्ञानिक इटियेन सिमोन लॉरियर ने ल्यूक के दावे को खारिज करते हुए कहा है कि "नोबेल विजेता ल्यूक का दावा तार्किक नहीं है क्योंकि अगर बहुत सूक्ष्म तत्व समान हैं भी तो ये तत्व पिछले कोरोनावायरसों में भी मिले हैं। यानी अगर किताब से हम कोई शब्द लें, जो किसी दूसरे शब्द से मिलता-जुलता हो तो क्या यह कहा जा सकता है कि किसी ने उस शब्द की नकल करके दूसरा शब्द बनाया है। यह अनर्गल प्रलाप है।" संक्षेप में ल्यूक के दावों का कोई वैज्ञानिक आधार नही है। ***(स्रोत फीचर्स)***

# आपदा के बीच नए शोध और नवाचार

**मनीष श्रीवास्तव**

**को**रोना वायरस को रोकने के लिए फिलहाल उपलब्ध दवाइयां काम नहीं आ रही हैं। वैज्ञानिक इस वायरस का इलाज निकालने तथा संक्रमण को रोकने के लिए दिन-रात शोध कार्यों में लगे हुए हैं। हाल ही में कुछ सकारात्मक खबरें देश और दुनिया से प्राप्त हुई हैं जिसमें शोध के सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए हैं।

ऑस्ट्रेलिया के वैज्ञानिकों को एक परजीवी-रोधी दवा आइवरमेक्टिन से कोरोना वायरस को खत्म करने में कामयाबी मिली है। ऑस्ट्रेलिया के मोनाश विश्वविद्यालय की काइली वागस्टाफ और उनके साथियों ने रिसर्च में पाया है कि पहले से मौजूद यह दवा कोरोना वायरस को खत्म कर सकती है। वैज्ञानिकों ने इस दवा से कोरोना से संक्रमित कोशिका से इस घातक वायरस को 48 घंटे में खत्म किया है। इससे अब क्लीनिकल ट्रायल का रास्ता साफ हो गया है। काइली वागस्टाफ का कहना है कि आइवरमेक्टिन का सामान्य तौर पर भी बड़े पैमाने पर इस्तेमाल होता है और यह सुरक्षित दवा मानी जाती है। अब हमें यह देखने की ज़रूरत है कि इसका डोज़ इंसानों में (कोरोनावायरस के खिलाफ) कारगर साबित होता है या नहीं।

कोरोनावायरस से स्वास्थ्य कर्मियों की सुरक्षा के लिए बॉयोसूट बनाने के बाद रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन ने पूरे शरीर को विषाणु मुक्त करने वाला पर्सनल सैनिटाइज़ेशन एन्क्लोज़र चैम्बर बनाया है। इसे कीटाणुशोधन कह सकते हैं। अभी इसकी डिजाइन तैयार की गई है। डीआरडीओ की अहमदनगर प्रयोगशाला वीआरडीई ने इसका डिज़ाइन तैयार किया है। यह फैक्ट्रियों व बड़े संस्थानों के लिए उपयोगी होगा, जहां ज़्यादा संख्या में लोग काम करते हैं। यह एक पोर्टेबल सिस्टम है। इसमें एक समय में एक व्यक्ति प्रवेश करेगा और एक पैडल का उपयोग करके इसे चालू करेगा। बिजली से चलने वाला सैनिटाइज़र पंप चालू हो जाएगा जो हाइपो सोडियम क्लोराइड की धुंध बनाता है। यह स्प्रे 25 सेकंड के लिए चालू होगा। इस अवधि में व्यक्ति के शरीर पर मौजूद विषाणु खत्म हो जाएंगे।

दुबई में रहने वाले भारतवंशी 7वीं कक्षा में पढ़ने वाले छात्र सिद्ध सांघवी ने रोबोट सैनेटाइज़र बनाया है जो आधा सें.मी. से भी कम दूरी पर हाथों की पहचान कर उन्हें सैनिटाइज़ कर देता है। इस सैनिटाइज़र को बार-बार छूना नहीं पड़ेगा।

अमेरिका में कोरोना वायरस संक्रमण को रोकने के लिए प्लाज़्मा थैरपी का सहारा लिया जा रहा है। वहां शोधकर्ता कोरोनावायरस से ठीक हुए लोगों से ब्लड डोनेट करवा रहे हैं। वे उनके रक्त से उन एंटीबॉडी को ढूंढने का प्रयास कर रहे हैं जिनकी बदौलत वे कोरोना वायरस से ठीक हुए हैं। इस अभियान को माउंट सिनाई हॉस्पिटल के प्रेसिडेंट डेविड

रीच ने शुरू किया है।

सरकारी स्तर पर कोरोना संक्रमण को रोकने के लिए सभी ज़रूरी प्रयास किए जा रहे हैं लेकिन दिन-ब-दिन संक्रमण के केस बढ़ते जा रहे हैं। ऐसे में इन सकारात्मक खबरों के आने से भविष्य में कुछ राहत मिलने के आसार लग रहे हैं। उम्मीद है ये प्रयास जल्द ही सफलता में बदलेंगे और पूरी दुनिया को कोरोनावायरस के आतंक से मुक्ति मिलेगी। ***(स्रोत फीचर्स)***

# शरीर में कोरोनावायरस का उपद्रव

चिकित्सक जोशुआ डेन्सन ने आईसीयू के रोगियों में विचित्र समानता देखी। इनमें से कई रोगी श्वसन सम्बंधी परेशानी का सामना कर रहे थे और कुछ के गुर्दे तेज़ी से खराब हो रहे थे। इस दौरान जोशुआ की टीम एक युवा महिला को बचाने में भी असफल रही थी जिसके हृदय ने काम करना बंद कर दिया था। यह काफी आश्चर्य की बात थी कि ये सभी रोगी कोविड पॉज़िटिव थे।

अब तक विश्व भर में कोविड-19 के 25 लाख से अधिक मामले सामने आ चुके हैं और 2.5 लाख से अधिक लोगों की मृत्यु हो चुकी है। चिकित्सक और रोग विज्ञानी नए कोरोनावायरस द्वारा शरीर पर होने वाले नुकसान को समझने में लगे हैं। हालांकि इस बात से तो वे अवगत हैं कि इसकी शुरुआत फेफड़ों से होती है लेकिन अब ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी पहुंच हृदय, रक्त वाहिकाओं, गुर्दों, आंत और मस्तिष्क सहित कई अंगों तक हो सकती है।

वायरस के इस प्रभाव को समझकर चिकित्सक कुछ लोगों का सही दिशा में इलाज कर सकते हैं। क्या हाल ही में देखी गई रक्त के थक्के बनने की प्रवृत्ति कुछ हल्के मामलों को जानलेवा बना सकती है? क्या मज़बूत प्रतिरक्षा प्रक्रिया सबसे खराब मामलों के लिए ज़िम्मेदार है, क्या प्रतिरक्षा को कम करके फायदा होगा? क्या ऑक्सीजन की कम मात्रा इसके लिए ज़िम्मेदार है? ऐसा क्या है जो यह वायरस पूरे शरीर की कोशिकाओं पर हमला करके विशेष रूप से 5 प्रतिशत रोगियों को गंभीर रूप से बीमार कर देता है। इस विषय में 1000 से अधिक पेपर प्रकाशित होने के बाद भी कोई स्पष्ट तस्वीर सामने नहीं है।

संक्रमित व्यक्ति छींकने पर वायरस की फुहार हवा में छोड़ता है और अन्य व्यक्ति की सांस के साथ वे नाक और गले में प्रवेश करते हैं जहां इस वायरस को पनपने के लिए एक अनुकूल माहौल मिलता है। श्वसन मार्ग में उपस्थित कोशिकाओं में ACE-2 ग्राही होते हैं। जो वायरस को कोशिका में घुसने में मदद करते हैं। वैसे तो ACE-2 शरीर में रक्तचाप को नियमित करता है लेकिन साथ ही इसकी उपस्थिति उन ऊतकों को चिन्हित करती है जो वायरस की घुसपैठ के प्रति कमज़ोर हैं। अंदर घुसकर वायरस कोशिका को वश में करके अपनी प्रतिलिपियां बनाकर अन्य कोशिकाओं में घुसने को तैयार हो जाता है।

जैसे-जैसे वायरस की संख्या बढ़ती है, संक्रमित व्यक्ति काफी मात्रा में वायरस छोड़ता है। इस दौरान रोग के लक्षण नहीं होते या बुखार, सूखी खांसी, गले में खराश, गंध और स्वाद का खत्म होना, सिरदर्द और बदनदर्द जैसे लक्षण हो सकते हैं।

इस दौरान यदि प्रतिरक्षा प्रणाली वायरस पर काबू नहीं पाती है तो यह श्वसन मार्ग से बढ़कर फेफड़ों तक पहुंच जाता है जहां यह जानलेवा हो सकता है। फेफड़ों में प्रत्येक कोशिका की सतह पर भी ACE-2 ग्राही पाए जाते हैं।

आम तौर पर ऑक्सीजन फेफड़ों की कोशिकाओं की परत को पार करके रक्त वाहिकाओं में और फिर पूरे शरीर में पहुंचती है। लेकिन प्रतिरक्षा प्रणाली द्वारा इस वायरस से लड़ते हुए ऑक्सीजन का यह स्वस्थ स्थानांतरण बाधित हो जाता है। ऐसे में श्वेत रक्त कोशिकाएं केमोकाइन्स नामक अणु छोड़ती हैं जो फिर और अधिक प्रतिरक्षी कोशिकाओं को वहां आकर्षित करता है ताकि वायरस से संक्रमित कोशिकाओं को खत्म किया जा सके। इस प्रक्रिया में मवाद बनता है जो निमोनिया का कारण बनता है। कुछ रोगी केवल ऑक्सीजन की सहायता से ठीक हो जाते हैं।

लेकिन कई अन्य लोगों में यह गंभीर रूप ले लेती है। ऐसे में रक्त नलिकाओं में ऑक्सीजन का स्तर अचानक से गिरने लगता है और सांस लेने में परेशानी होने लगती है। आम तौर पर ऐसे रोगियों को वेंटीलेटर की ज़रूरत पड़ती है और कई तो ऐसी स्थिति में पहुंचकर दम तोड़ देते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

# प्रजातियों के बीच फैलने वाली जानलेवा बीमारियां

किसी प्रजाति के लिए हानिकारक बैक्टीरिया और वायरस किसी अन्य प्रजाति को संक्रमित करने के लिए काफी तेज़ी से विकसित हो सकते हैं। कोरोनावायरस इसका सबसे नवीन उदाहरण है। एक जानलेवा बीमारी का जनक यह वायरस जानवरों से मनुष्यों में आ पहुंचा है और शायद मनुष्यों से जानवरों में भी पहुंच रहा है।

इस तरह के प्रजाति-पार संक्रमण पशु पालन के स्थानों पर या बाज़ार में शुरू हो सकते हैं जहां संक्रामक जीवों के संपर्क को बढ़ावा मिलता है। ऐसी परिस्थिति में विभिन्न रोगजनक सूक्ष्मजीवों के बीच जीन्स का लेन-देन हो सकता है। ऐसा भी हो सकता है सामान्य जंतु-मनुष्य संपर्क के दौरान कोई सूक्ष्मजीव प्रजाति की सीमा-रेखा पार कर जाए।

जंतुओं से मनुष्यों में पहुंचने वाले रोगों को ज़ुऑनोसेस कहा जाता है। इनमें 3 दर्ज़न से अधिक रोग तो ऐसे हैं जो सिर्फ स्पर्श से हमें संक्रमित कर सकते हैं जबकि 4 दर्ज़न से अधिक ऐसे हैं जो जीवों के काटने से हमें मिलते हैं। इनमें कुछ रोग ऐसे भी हैं जो मनुष्यों से जीवों में पहुंचते हैं। यहां एक से दूसरी प्रजातियों में फैलने वाली कुछ जानलेवा बीमारियों पर चर्चा की गई है।

**नया कोरोनावायरस**

नए कोरोनावायरस (SARS-CoV-2) की पहचान दिसंबर 2019 में चीन के वुहान प्रांत के सी-फूड बाज़ार में हुई थी। आनुवंशिक विश्लेषण से पता चला कि यह चमगादड़ से आया है। उस बाज़ार में चमगादड़ नहीं बेचे जाते थे, इसलिए वैज्ञानिकों ने माना कि इस वायरस के मानवों में संक्रमण के पीछे एक अज्ञात तीसरा जीव होना चाहिए। कुछ अध्ययनों के आधार पर कहा जा रहा है कि यह मध्यवर्ती जीव पैंगोलिन हो सकता है। लेकिन *नेचर* पत्रिका के अनुसार अवैध रूप से तस्करी किए गए पैंगोलिन से प्राप्त नमूने SARS-CoV-2 से इतना मेल नहीं खाते हैं जिससे इसकी पुष्टि एक मध्यवर्ती जीव के रूप में की जा सके। इसके पूर्व के अध्ययनों में सांपों को इसका संभावित स्रोत माना गया था लेकिन सांपों में कोरोनावायरस के संक्रमण की पुष्टि नहीं की गई है।

**इन्फ्लुएंज़ा महामारियां**

वर्ष 1918 में इन्फ्लुएंज़ा ने कुछ ही महीनों में 5 करोड़ लोगों की जान ली थी। विश्व की एक-तिहाई आबादी को संक्रमित करने वाला यह इन्फ्लुएंज़ा वायरस (H1N1) पक्षी-मूल का था। मुख्य रूप से बुज़ुर्गों और कमज़ोर प्रतिरक्षा तंत्र वाले लोगों की जान लेने वाले साधारण फ्लू के विपरीत H1N1 ने युवा व्यस्कों को अपना शिकार बनाया था। ऐसा लगता है कि बुज़ुर्गों में पिछले किसी H1N1 संक्रमण के कारण प्रतिरक्षा उत्पन्न हुई थी, और इस वजह से 1918 की महामारी में उन पर ज़्यादा असर नहीं हुआ।

H1N1 वायरस (H1N1pdm09) का नवीनतम हमला 2009 में हुआ था जिसमें अमेरिका में 6.08 करोड़ मामले सामने आए थे और 12,496 लोगों की मौत हुई थी। विश्व भर में मौतों की संख्या डेढ़ से पौने छः लाख के बीच थी। यह वायरस सूअरों के झुंड में उत्पन्न हुआ था जहां आनुवंशिक पदार्थ की अदला बदली के दौरान इन्फ्लुएंज़ा वायरसों का पुनर्गठन हुआ। यह प्रक्रिया उत्तरी अमेरिकी और यूरेशियन सूअरों में प्राकृतिक रूप से होती रहती है।

**प्लेग**

14वीं सदी में ब्लैक डेथ के नाम से मशहूर इस एक बीमारी के सामने कई सभ्यताओं ने घुटने टेक दिए थे। युरोप से लेकर मिस्र और एशिया तक अनगिनत लोग मारे गए थे। उस समय 36 करोड़ की आबादी वाले विश्व में 7.5 करोड़ लोग मारे गए थे। प्लेग एक बैक्टीरिया-जनित रोग है जो *यर्सिनिया पेस्टिस* नामक बैक्टीरिया के कारण होता है। यह बैक्टीरिया चूहों (और शायद बिल्लियों) में रहता है और संक्रमित पिस्सुओं के काटने से मनुष्यों में फैल जाता है। यह एक जानलेवा रोग है और आज भी यदि इसका इलाज न किया जाए तो जानलेवा होता है।

14वीं शताब्दी का प्लेग जिस बैक्टीरिया के कारण फैला था वह गोबी रेगिस्तान में वर्षों तक निष्क्रिय रहने के बाद चीन के व्यापार मार्गों के माध्यम से युरोप, एशिया और अन्य देशों में फैल गया। इसके लक्षणों में बुखार, ठंड लगना, कमज़ोरी, लसिका ग्रंथियों में सूजन और दर्द शामिल हैं। कई समाजों को इससे उबरने में सदियों लगी थीं।

**दंश से फैलते रोग**

कई जंतु-वाहित बीमारियां जानवरों द्वारा काटने से फैलतीहैं।

मच्छरों द्वारा मानव शरीर में परजीवी के संक्रमण से मलेरिया रोग काफी जानलेवा सिद्ध होता है। एक रिपोर्ट के अनुसार मच्छरों के काटने से वर्ष 2018 में लगभग 22.8 करोड़ लोग संक्रमित हुए जबकि 40 लाख से अधिक लोगों की मौत हो गई। इनमें सबसे अधिक संख्या अफ्रीकी देशों में रहने वाले बच्चों की थी।

मच्छरों से फैलने वाले डेंगू बुखार से सालाना 40 करोड़ लोग संक्रमित होते हैं, जिनमें से 10 करोड़ लोग बीमार होते हैं और 22,000 लोग मारे जाते हैं। यह रोग *एडीज़* वंश के मच्छर द्वारा काटने से होता है।

**पालतू प्राणि और चूहे**

पालतू प्राणियों से होने वाली बीमारियों में रेबीज़ सबसे जानी-मानी है। इससे हर वर्ष लगभग 55,000 लोगों की मृत्यु होती है। इनकी सबसे अधिक संख्या एशिया और अफ्रीका के देशों में होती है। आम तौर पर यह रोग संक्रमित पालतू कुत्ते के काटने से होता है हालांकि जंगली जानवरों में रैबीज़ के वायरस पाए जाते हैं।

एक और बीमारी है जो जानवर के काटे बगैर भी हो जाती है। चूहों जैसे प्राणियों में मौजूद हैन्टावायरस उनके मल, मूत्र वगैरह में होता है और यदि ये पदार्थ कण रूप में हवा में फैल जाएं तो वायरस सांस के साथ मनुष्यों में पहुंच जाता है। यह मुख्य रूप से डीयर माइस से फैलता है। यह वायरस एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में संचरण नहीं करता है। इसके मुख्य लक्षणों में ठंड लगना, बुखार, सिरदर्द आदि शामिल हैं। वैसे तो यह बीमारी बिरली है लेकिन इसकी मृत्यु दर 36 प्रतिशत है।

**एचआईवी/एड्स**

सीडीसी के अनुसार एड्स का वायरस (एचआईवी) मध्य अफ्रीका के एक चिम्पैंज़ी से आया है। यह वायरस (मूलतः एसआईवी) मनुष्यों में इन जीवों के शिकार ज़रिए पहुंचा है। यह मनुष्यों में इन जीवों के संक्रमित खून से आया जिसने मानवों में विकसित होकर एचआईवी का रूप ले लिया। अध्ययनों के अनुसार यह मनुष्यों में 18वीं सदी से मौजूद है।

एचआईवी प्रतिरक्षा तंत्र को तहस-नहस कर देता है जिससे जानलेवा बीमारियों और कैंसर का रास्ता खुल जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक वर्ष 2018 में 7.7 लाख लोगों की मृत्यु एचआईवी के कारण हुई जबकि इसी वर्ष के अंत तक 3.7 करोड़ लोग इससे संक्रमित पाए गए। एच.आई.वी. संक्रमित लोगों में टीबी से मृत्यु दर काफी अधिक होती है। यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में शारीरिक तरल पदार्थ (जैसे खून, स्तनपान, वीर्य, योनि स्राव आदि) के आदान प्रदान से पहुंचता है।

**मस्तिष्क पर नियंत्रण**

एक विचित्र परजीवी *टोक्सोप्लाज़्मा गोंडाई* ने विश्व भर में लगभग 2 अरब लोगों को अपना शिकार बनाया है। यह परजीवी शीज़ोफ्रीनिया का कारण होता है। इसका प्राथमिक मेज़बान बिल्लियां हैं। यह रोगाणु बिल्ली की आंत में विकसित होते हैं। इसके अंडे बिल्ली के मल के साथ बाहर आते हैं और इनके छोटे-छोटे कण हवा के माध्यम से नाक के ज़रिए मनुष्यों में प्रवेश कर जाते हैं।

मनुष्य में प्रवेश करने के बाद ये अंडे शरीर के उन अंगों में छिप जाते हैं जहां प्रतिरक्षा तंत्र का अभाव होता है, जैसे मस्तिष्क, हृदय, और कंकाल की मासपेशियां। इन अंगों में अंडे सक्रिय परजीवी टैकीज़ोइट में तबदील हो जाते हैं और अन्य अंगों में फैलने व संख्यावृद्धि करने लगते हैं।

इनको मस्तिष्क पर नियंत्रण करने वाला जीव इसलिए कहा जाता है क्योंकि इससे संक्रमित चूहों में बिल्लियों का डर खत्म हो जाता है और वे बिल्लियों के मूत्र की गंध की ओर आकर्षित होने लगते हैं। ऐसे में वे बिल्ली का आसान शिकार बन जाते हैं और परजीवी को बिल्ली की आंत में पहुंचने का एक आसान रास्ता मिल जाता है।

मनुष्यों में इनके संक्रमण का कोई खास लक्षण दिखाई नहीं देता है। हालांकि कुछ मामलों में सामान्य फ्लू और लसिका नोड्स पर सूजन की शिकायत होती है जो कुछ हफ्तों से लेकर महीनों तक रहती है। कभी-कभार दृष्टि गंवाने से लेकर मस्तिष्क क्षति जैसी गंभार समस्याएं हो सकती हैं।

**सिस्टीसर्कोसिस**

सिस्टीसर्कोसिस की समस्या फीता कृमि (*टीनिया सोलियम*) के अण्डों के शरीर में प्रवेश करने से होती है। इसका लार्वा मांसपेशियों और मस्तिष्क में पहुंच कर गठान बना देता है। मनुष्यों में यह सूअर के मांस का सेवन करने से भी पहुंचता है। यह छोटी आंत के अस्तर से जुड़कर दो महीनों में एक व्यस्क कृमि में विकसित हो जाता है। इसका सबसे खतरनाक रूप मस्तिष्क में गठान के रूप में सामने आता है। इसके लक्षणों में सिरदर्द, दौरे, भ्रमित होना, मस्तिष्क में सूजन, संतुलन बनाने में समस्या, स्ट्रोक या मृत्यु शामिल हैं।

**एबोला**

यह रोग *एबोला* वायरस के पांच में से एक प्रकार के कारण होता है। यह मध्य अफ्रीका में गोरिल्ला और चिम्पैंज़ियों के लिए एक बड़ा खतरा है। सीडीसी के अनुसार मनुष्यों में यह चमगादड़ या गैर-मानव प्राइमेट्स के द्वारा फैली है। इसकी पहचान पहली बार कांगो में एबोला नदी के किनारे हुई थी। यह वायरस संक्रमित प्राणियों के रक्त या शरीर के अन्य तरल पदार्थों से फैलता है। मनुष्यों के बीच यह निकट संपर्क से फैलता है।

इसके लक्षण काफी भयानक होते हैं। अचानक बुखार, कमज़ोरी, मांसपेशियों में दर्द, सिरदर्द, और गले में खराश शुरुआती लक्षण हैं, जिसके बाद उल्टी, दस्त, शरीर पर दाने, गुर्दों और लीवर की तकलीफ और कुछ मामलों में आंतरिक और बाहरी रक्तस्राव। मृत्यु दर 90 प्रतिशत तक हो सकती है।

**लाइम रोग**

यह रोग एक काली टांग वाले पिस्सू द्वारा मनुष्यों में बैक्टीरिया संक्रमण के कारण होता है। यह रोग मुख्य रूप से *बोरेलिया बर्गडोरफेरी* प्रजाति और कभी-कभी एक अन्य प्रजाति *बी. मेयोनाई* से भी होता है। इसके लक्षणों में बुखार, सिरदर्द, थकान और त्वचा पर चकत्ते शामिल हैं। उपचार न किया जाए तो यह शरीर के जोड़ों से हृदय और तंत्रिका तंत्र तक फैल जाता है। हर वर्ष इसके लगभग 30,000 मामले सामने आते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

# ऐसा क्यों लगता है कि यह पहले हो चुका है?

**क्या** आपको कभी ऐसा आभास हुआ है कि जो दृश्य आप अभी देख रहे हैं वह पहले भी देख चुके हैं या जो घटना अभी आपके साथ घट रही है हू-ब-हू वही घटना आपके साथ पहले भी घट चुकी है। यदि आपने ऐसा महसूस किया है तो इस आभास को *देजा वू* कहते हैं। *देजा वू* फ्रेंच शब्द है जिसका मतलब है 'पहले देखा गया'। लेकिन *देजा वू* का एहसास होता क्यों है?

आम तौर पर इस एहसास को रहस्यमयी और असामान्य माना जाता है। अलबत्ता, इसे समझने के लिए वैज्ञानिकों ने कई अध्ययन किए हैं। प्रायोगिक तौर पर सम्मोहन और आभासी यथार्थ के इस्तेमाल से ऐसी स्थितियां उत्पन्न की गई हैं जिनमें *देजा वू* का एहसास हो।

इन प्रयोगों से वैज्ञानिकों का अनुमान था कि *देजा वू* एक स्मृति आधारित घटना है। यानी *देजा वू* में हम एक ऐसी स्थिति का सामना करते हैं जो हमारी किसी वास्तविक समृति के समान होती है। लेकिन उस स्मृति को हम पूरी तरह याद नहीं कर पाते हैं तो हमारा मस्तिष्क हमारे वर्तमान और अतीत के अनुभवों के बीच समानता पहचानता है। और हमें एहसास होता है हम इस स्थिति से परिचित हैं। इस व्याख्या से इतर, अन्य सिद्धांत भी हैं जो यह समझाने का प्रयास करते हैं कि हमारी स्मृति ऐसा व्यवहार क्यों करती हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यह हमारे मस्तिष्क के कनेक्शन में घालमेल का नतीजा है जो लघुकालीन स्मृति और दीर्घकालीन स्मृति के बीच गड़बड़ पैदा कर देता है। इसके फलस्वरूप, बनने वाली नई स्मृति लघुकालीन स्मृति में बने रहने की बजाय सीधे दीर्घकालीन समृति में चली जाती है। जबकि कुछ लोगों का कहना है कि यह राइनल कॉर्टेक्स के कारण होता है जो मस्तिष्क में किसी स्मृति के नदारद होने पर भी कभी-कभी इसके होने के संकेत देता है। राइनल कॉर्टेक्स मस्तिष्क का वह हिस्सा है जो परिचित स्थिति महसूस होने के संकेत देता है।

एक अन्य सिद्धांत के अनुसार *देजा वू* झूठी यादों से जुड़ा मामला है, ऐसी यादें जो वास्तविक महसूस होती हैं लेकिन होती नहीं। ठीक सपने और हकीकत की तरह। एक अन्य अध्ययन में 21 लोगों को *देजा वू* का एहसास कराया गया और साथ ही उनके मस्तिष्क का fMRI स्कैन किया गया। अध्ययन में दिलचस्प बात यह पता चली कि *देजा वू* के वक्त मस्तिष्क का स्मृति के लिए ज़िम्मेदार हिस्सा, हिप्पोकैम्पस, सक्रिय नहीं था बल्कि मस्तिष्क का निर्णय लेने वाला हिस्सा सक्रिय था। अब तक *देजा वू* को स्मृति से जोड़कर देखा जाता था। इन परिणामों के आधार पर शोधकर्ताओं का कहना है कि *देजा वू* हमारे मस्तिष्क में किसी तरह के विरोधाभास को सुलझाने के लिए उत्पन्न होता होगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

# एंज़ाइम की मदद से प्लास्टिक पुनर्चक्रण

दुनिया भर में प्लास्टिक रिसाइक्लिंग एक बड़ी समस्या है। *नेचर* पत्रिका में प्रकाशित शोध के मुताबिक इस समस्या के समाधान में शोधकर्ताओं ने हाल ही में एक ऐसा एंज़ाइम तैयार किया है जो प्लास्टिक को 90 प्रतिशत तक रिसाइकल कर सकता है।

पॉलीएथिलीन टेरेथेलेट (PET) दुनिया में सर्वाधिक इस्तेमाल होने वाला प्लास्टिक है। इसका सालाना उत्पादन लगभग 7 करोड़ टन है। वैसे तो अभी भी PET का पुनर्चक्रण किया जाता है लेकिन इसमें समस्या यह है कि पुनर्चक्रण के लिए कई रंग के प्लास्टिक जमा होते हैं। जब इनका पुनर्चक्रण किया जाता है तो अंत में भूरे या काले रंग का प्लास्टिक मिलता है। यह पेकेजिंग के लिए आकर्षक नहीं होता इसलिए इसे या तो चादर के रूप में या अन्य निम्न-श्रेणी के फाइबर प्लास्टिक में बदल दिया जाता है। और अंततः इसे या तो जला दिया जाता है या लैंडफिल में फेंक दिया जाता है जिसे पुनर्चक्रण तो नहीं कहा जा सकता।

इसी समस्या के समाधान में वैज्ञानिक एक ऐसे एंज़ाइम की खोज में थे जो PET और अन्य प्लास्टिक का पुनर्चक्रण कर सके। 2012 में ओसाका विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं को कम्पोस्ट के ढेर में LLC नामक एक एंज़ाइम मिला था जो PET के दो बिल्डिंग ब्लॉक, टेरेथेलेट और एथिलीन ग्लायकॉल, के बीच के बंध को तोड़ सकता है। प्रकृति में इस एंज़ाइम का काम है कि यह कई पत्तियों पर मौजूद मोमी आवरण का विघटन करता है। LLC सिर्फ पीईटी बंधों को तोड़ सकता है और वह भी धीमी गति से। लेकिन यदि तापमान 65 डिग्री सेल्सियस हो तो कुछ समय काम करने के बाद यह नष्ट हो जाता है। इसी तापमान पर तो PET नरम होना शुरू होता है और तभी एंज़ाइम आसानी से प्लास्टिक के बंध तक पहुंचकर उन्हें तोड़ सकेगा।

हालिया शोध में प्लास्टिक कंपनी कारबायोस के एलैन मार्टी और उनके साथियों ने इस एंज़ाइम में कुछ फेरबदल किए। उन्होंने उन अमिनो अम्लों का पता किया जिनकी मदद से यह एंज़ाइम टेरेथेलेट और एथिलीन ग्लाइकॉल समूहों के रासायनिक बंध से जुड़ता है। उन्होंने इस एंज़ाइम को उच्च तापमान पर काम करवाने के तरीके भी खोजे।

इसके बाद शोधकर्ताओं ने ऐसे सैकड़ों परिवर्तित एंज़ाइम्स की मदद से PET प्लास्टिक का पुनर्चक्रण करके देखा। कई प्रयास के बाद उन्हें एक ऐसा परिवर्तित एंज़ाइम मिला जो मूल LLC की तुलना में 10,000 गुना अधिक कुशलता से PET बंध तोड़ सकता है। यह एंज़ाइम 72 डिग्री सेल्सियस पर भी काम करता है। प्रायोगिक तौर पर इस एंज़ाइम ने 10 घंटों में 90 प्रतिशत 200 ग्राम PET का पुनर्चक्रण किया। इस प्रक्रिया से प्राप्त टेरेथेलेट और एथिलीन ग्लायकॉल से PET और प्लास्टिक बोतल तैयार किए गए जो नए प्लास्टिक जितने मज़बूत थे। हालांकि अभी स्पष्ट नहीं है कि यह आर्थिक दृष्टि से कितना वहनीय होगा लेकिन इसकी खासियत यह है कि इससे जो प्लास्टिक मिलता है वह नए जैसा टिकाऊ और आकर्षक होता है। ***(स्रोत फीचर्स)***

## अगले अंक में....

**स्रोत जुलाई 2020**
**अंक 378**

- **महामारी का अंत कैसे होगा**
- **पारंपरिक विश्वास और आज का विज्ञान**
- **मांसाहारी पौधों में मांस के चस्के का विकास**
- **कॉम्ब जेली का जाड़ों का भोजन उन्हीं के बच्चे**

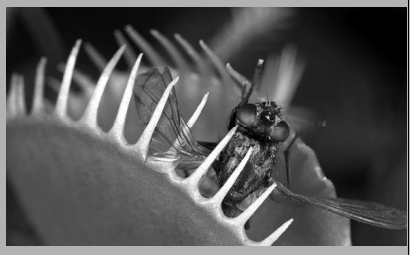

# युनिस फुट - जलवायु परिवर्तन पर समझ की जननी

आज जलवायु परिवर्तन और बढ़ते वैश्विक तापमान की समस्या और इसके कारणों से हम वाकिफ हैं और इसे नियंत्रित करने के प्रयास में लगे हैं। अब तक इस समस्या के कारण को समझने का श्रेय जॉन टिंडल को दिया जाता है। लेकिन युनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया के विज्ञान इतिहासकार जॉन पर्लिन का कहना है कि जलवायु परिवर्तन की हमारी समझ की नींव रखने का श्रेय युनिस फुट को जाता है। फुट ने कार्बन डाईऑक्साइड के ऊष्मीय प्रभाव का अध्ययन किया था जो वर्ष 1856 में *सूर्य की किरणों की ऊष्मा को प्रभावित करने वाली परिस्थितियां* शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। जॉन टिंडल का कार्य तीन वर्ष बाद प्रकाशित हुआ था।

युनिस फुट (1819-1888)

पर्लिन बताते हैं कि 1856 में न्यूयॉर्क में *अमेरिकन एसोसिएशन फॉर एडवांसमेंट ऑफ साइन्स* की 10वीं वार्षिक बैठक में फुट का पेपर प्रस्तुत किया गया था। तब महिलाओं को अपना काम प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं थी इसलिए उनके पेपर को एक अन्य वैज्ञानिक ने प्रस्तुत किया था। इसे बैठक की कार्यावाही में नहीं बल्कि *अमेरिकन जर्नल ऑफ साइंस एंड आर्ट्स* में एक लघु लेख के रूप में प्रकाशित किया गया था। अपने इस अध्ययन में उन्होंने नम और शुष्क वायु, और कार्बन डाईऑक्साइड, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन गैसों पर सूर्य के प्रकाश का प्रभाव देखा था। अध्ययन में फुट ने पाया कि सूर्य के प्रकाश का सर्वाधिक प्रभाव कार्बोनिक एसिड गैस पर होता है। उनके अनुसार वायुमंडल में मौजूद इस गैस के कारण हमारी पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हुई होगी।

इस बारे में 13 सितंबर के *साइंटिफिक अमेरिकन* के अंक में *वैज्ञानिक महिलाएं - संघनित गैसों के साथ प्रयोग* शीर्षक से एक लेख भी प्रकाशित हुआ था। इसके एक साल बाद अगस्त 1857 में उन्होंने एक अन्य अध्ययन प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने वायु पर बदलते दाब, ताप और नमी के प्रभावों का अध्ययन किया और इसे वायुमंडलीय दाब और तापमान में होने वाले परिवर्तनों से जोड़ा।

उन्होंने कई आविष्कारों के पेटेंट के लिए आवेदन किए। अमेरिकी महिलाओं के मताधिकार और बंधुआ मज़दूरी के खिलाफ आंदोलन में भी उनकी सक्रिय भागीदारी रही।

फुट के काम के बारे में पता चलने के बाद एक महत्वपूर्ण सवाल यह उठता है कि क्या लंदन के रॉयल इंस्टीट्यूशन में काम कर रहे टिंडल अपने शोध प्रकाशन के समय फुट के काम से वाकिफ थे? पर्लिन का मत है कि टिंडल वाकिफ थे क्योंकि फुट के शोध पत्र की रिपोर्ट और सारांश कई युरोपीय पत्रिकाओं में पुनः प्रकाशित किए गए थे। रॉयल इंस्टीट्यूशन में *अमेरिकन जर्नल ऑफ साइंस एंड आर्ट्स* पत्रिका पहुंचती थी और नवंबर 1856 के जिस अंक में फुट का लेख प्रकाशित हुआ था, उसी में वर्णांधता पर टिंडल का भी एक लेख छपा था। *दी फिलॉसॉफिकल मैगज़ीन* में भी फुट का लेख प्रकाशित हुआ था, जिसके संपादक टिंडल थे। इसके अलावा, फुट के लेख का सार जर्मन भाषा में साल की महत्वपूर्ण खोज के संकलन के रूप में प्रकाशित हुआ था। टिंडल जर्मन भाषा को जानकार थे।

पर्लिन का कहना है कि फुट को उनके काम का श्रेय ना मिलने की पहली वजह तो यह हो सकती है कि वे ये प्रयोग शौकिया तौर पर करती थीं; दूसरा, उस वक्त तक अंग्रेज़ अपने को अमरीकियों से श्रेष्ठ मानते थे; और तीसरा, कि वह एक महिला थीं। टिंडल खुद महिलाओं के मताधिकार के विरोधी थे और महिलाओं का बौद्धिक स्तर पुरुषों से कम मानते थे। बहरहाल, पर्लिन का मत है कि फुट को जलवायु परिवर्तन की समझ की जननी के रूप में जाना जाए। ***(स्रोत फीचर्स)***

# वायरस का तोहफा है स्तनधारियों में गर्भधारण

**कालू राम शर्मा**

इन दिनों कोरोनावायरस सुर्खियों में है। इसने लाखों लोगों को बीमार कर दिया है और ढाई लाख से ज़्यादा लोगों की जान ले ली है।

लेकिन तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि वायरसों ने जीव जगत में सहयोग व सहकार की भूमिका भी अदा की है। और सहयोग व सहकार केवल थोड़े समय के लिए नहीं बल्कि हमेशा-हमेशा के लिए। उन्होंने जीवों में घुसपैठ कर उनकी कोशिकाओं में अपने जींस छोड़ दिए हैं जिनकी बदौलत उन प्रजातियों के विकास की दिशा बदल गई।

दिलचस्प बात है कि स्तनधारी अपने इस रूप में वायरस की बदौलत ही हैं। अगर वायरस स्तनधारियों में घुसपैठ न करते तो शायद हम इस रूप में न होते। आज के स्तनधारी जो अपने बच्चे को गर्भ में सहेजकर रखते हैं, वे तो हरगिज नहीं होते। गर्भधारण के लिए ज़रूरी गर्भनाल (प्लेसेंटा) वायरस की ही देन है।

हम जानते हैं कि स्तनधारी समूह के एक बड़े वर्ग - चूहे, चमगादड़, व्हेल, हाथी, छछूंदर, कुत्ते, बिल्ली, भेड़, मवेशी, घोड़ा, कपि, बंदर व मनुष्य में गर्भनाल पाई जाती है। गर्भनाल मांसल, रस्सीनुमा संरचना है जिसका एक सिरा गर्भाशय से जुड़ा होता है और दूसरा बच्चे से।

गर्भनाल एक ऐसी व्यवस्था है जो गर्भ में पल रहे बच्चे को वहां एक नियत अवधि तक टिके रहने में अहम भूमिका अदा करती है। मनुष्य में बच्चा लगभग नौ माह तक मां के गर्भ में रहता है। इस दौरान उसे नियमित ऑक्सीजन व पोषण चाहिए जो गर्भनाल के ज़रिए ही मां से उपलब्ध होता है। गर्भनाल बच्चे के विकास को प्रेरित करती है। यह बच्चे को कई तरह के संक्रमण से भी बचाती है। यह दिलचस्प है कि जो बीमारी गर्भावस्था के दौरान मां को हो उससे गर्भ में पल रहा बच्चा सुरक्षित रहता है। गर्भनाल कई मायनों में बच्चे व मां के बीच एक अवरोध का भी काम करती है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि गर्भनाल की बदौलत ही मां का शरीर भ्रूण को पराया मानकर उस पर हमला नहीं करता।

सवाल यह है कि मादा स्तनधारी में अंडे के निषेचन के बाद गर्भनाल के निर्माण के लिए कौन-से जींस ज़िम्मेदार हैं? इस सवाल का जवाब वे वायरस देते हैं जिन्होंने सैकड़ों-लाखों साल पहले स्तनधारियों के पूर्वजों को संक्रमित किया था। उन वायरसों ने संक्रमित जंतुओं को परेशान नहीं किया बल्कि उनके शरीर में जाकर बैठ गए। मज़े की बात यह है कि वायरस मेज़बान की कोशिका के जीनोम का हिस्सा बन गए व मेज़बान ने उनका फायदा उठाया।

बात 6.5 करोड़ बरस पहले की है। एक छोटा, मुलायम, छछूंदर जैसा निशाचर जीव था। यह आधुनिक स्तनधारी जैसा ही दिखता था। अलबत्ता, उसमें गर्भनाल नहीं थी। आधुनिक स्तनधारियों की गर्भनाल उस छछूंदर के साथ एक रेट्रोवायरस की मुठभेड़ का नतीजा है।

वायरस की खासियत होती है कि यह किसी सजीव कोशिका में पहुंचकर उसके केंद्रक में अपना न्यूक्लिक अम्ल डाल देता है। वायरस का न्यूक्लिक अम्ल मेज़बान कोशिका के न्यूक्लिक अम्ल को निष्क्रिय कर देता है और खुद कोशिका पर नियंत्रण कर लेता है। अब उस सजीव की कोशिका पर वायरस की ही सल्तनत होती है। वायरस उस कोशिका में अपनी प्रतिलिपियां बनाने लगता है।

रेट्रोवायरस एक प्रकार के वायरस हैं जो आरएनए को आनुवंशिक सामग्री के रूप में इस्तेमाल करते हैं। कोशिका को संक्रमित करने के बाद रेट्रोवायरस अपने आरएनए को डीएनए में बदलने के लिए रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेज़ नामक एंज़ाइम का इस्तेमाल करते हैं। रेट्रोवायरस तब अपने वायरल डीएनए को मेज़बान कोशिका के डीएनए में एकीकृत करता है। एड्स वायरस रेट्रोवायरस ही है।

आज के स्तनधारियों के पूर्वज के शुक्राणु या अंडाणुओं में वायरस के जींस पहुंच गए और फिर हर पीढ़ी में पहुंचने में कामयाब हो गए। इस तरह से वायरस पूरी तरह से मेज़बान के जीनोम का हिस्सा बन गए। जीनोम अध्ययन से पता चलता है कि मानव के जीनोम में वायरस के लगभग 1 लाख ज्ञात अंश हैं जो हमारे कुल डीएनए का आठ फीसदी से अधिक है। यानी हम आठ फीसदी वायरस से बने हुए हैं।

जब कोई वायरस अपने जीनोम को मेज़बान के साथ एकीकृत करता है तो नए संकर जीनोम बनते हैं तथा वह

कोशिका मर जाती है। लेकिन कभी-कभी कुछ दुर्लभ घटना घट सकती है। मसलन शुक्राणु या अंडाणु अगर वायरस से संक्रमित होकर निषेचित हो जाए तो अगली पीढ़ियों की संतानों में वायरल जीनोम की एक प्रति होगी। इसे वैज्ञानिक अंतर्जात रेट्रोवायरस कहते हैं।

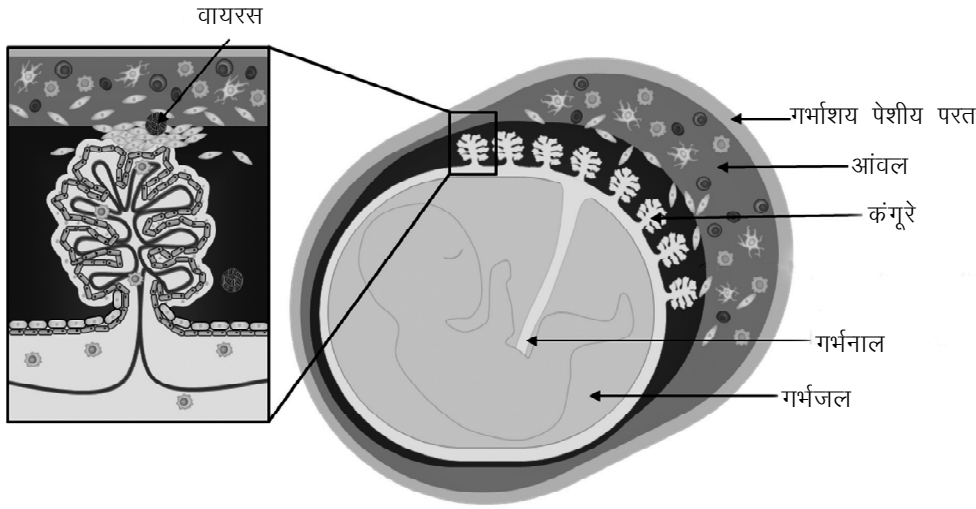


प्रारंभिक स्तनधारियों में वायरस के उन कबाड़ में पड़े हुए जींस का इस्तेमाल गर्भनाल बनाने में किया जाने लगा जो आज भी जारी है। सिंसिटिन जो कि रेट्रोवायरस के जीनोम का हिस्सा था वह लाखों बरस पहले स्तनधारी के पूर्वजों में घुसपैठ कर चुका है। यह स्तनधारियों में गर्भधारण के लिए बेहद अहम है। मूल रूप से सिंसिटिन नामक प्रोटीन वायरस को मेज़बान कोशिका के साथ जुड़ने में मदद करता है। सामान्य हालात में वायरस के संक्रमण की स्थिति में सिंसिटिन का संश्लेषण मेज़बान की जीन मशीनरी के माध्यम से होता है और ये एक कोशिका से दूसरी में स्थानांतरित होते रहते हैं। बेशक, सिंसिटिन प्राचीन वायरस की देन है जो गर्भावस्था के दौरान गर्भनाल की कोशिकाओं में प्रकट होता है। सिंसिटिन बनाने वाली कोशिकाएं केवल वहीं होती है जहां गर्भनाल से गर्भाशय का संपर्क बनता है। ये एकल कोशिकीय परत बनाने के लिए एक साथ जुड़ती हैं व भ्रूण अपनी मां से इसके ज़रिए आवश्यक पोषण प्राप्त करता है। वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि इस जुड़ाव के लिए सिंसिटिन का बनना अनिवार्य है। सिंसिटिन का जीन तो वायरस में ही पाया जाता है।

यह दिलचस्प है कि सिंसिटिन प्रोटीन का जीन विकासक्रम में स्तनधारियों के जीनोम में बना रहा। सिंसिटिन तब प्रकट होता है जब कोई पराई चीज़ आक्रमण करे। स्वाभाविक है कि अंडाणु को निषेचित करने वाला नर का शुक्राणु मादा के लिए पराया होता है। जब निषेचित अंडा गर्भाशय में आता है, तब सिंसिटिन प्रोटीन का निर्माण गर्भाशय की कोशिकाएं करती है व भ्रूण को गर्भाशय की दीवार से चिपकने का रास्ता आसान बनाती है।

स्तनधारियों में सिंसिटिन का निर्माण करने वाले जीन आम तौर पर सुप्तावस्था में पड़े रहते हैं। जब गर्भधारण की स्थिति बनती है तब ये जागते हैं और सिंसिटिन के निर्माण का सिलसिला शुरू होता है। प्लेसेंटा में सिंसिटिन का निर्माण करने वाली कोशिकाएं होती हैं। सिंसिटिन नामक यह पदार्थ प्लेसेंटा व मातृ-कोशिका के बीच सीमाओं को निर्धारित करता है। अंड कोशिका के निषेचन के लगभग एक सप्ताह बाद भ्रूण गोल खोखली गेंदनुमा रचना (ब्लास्टोसिस्ट) में विकसित हो जाता है व गर्भाशय में रोपित होकर गर्भनाल के निर्माण को उकसाता है। यही गर्भनाल भ्रूण को ऑक्सीजन और पोषण उपलब्ध कराती है। ब्लोस्टोसिस्ट की बाहरी परत की कोशिकाएं गर्भनाल की बाहरी परत का निर्माण करती है और गर्भाशय से जो सीधे संपर्क में कोशिकाएं होती हैं वे सिंसिटिन का निर्माण करती है।

कोशिकाओं में कबाड़ के रूप में पड़े डीएनए में ज़्यादातर हिस्सा सहजीवी वायरस का है। मनुष्यों के हालिया विकास में अंतर्जात रेट्रोवायरस की भूमिका का खुलासा करने वाले नए अध्ययनों से पता चलता है कि डीएनए के ये टुकड़े मानव और वायरस के बीच की सीमा को धुंधला करते हैं। इस दृष्टि से देखा जाए, तो मनुष्य आंशिक रूप वायरस ही हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

# वायरस रोगों का इलाज भी कर सकते हैं

**कालू राम शर्मा**

दुनिया के रंगमंच पर एक वायरस इन दिनों खलनायक की भूमिका में है!SARS-CoV-2 नामक वायरस की वजह से इंसानी दुनिया के पहिए थम चुके हैं।

और वायरस की हैसियत क्या है। पूरी तरह से सजीव की पदवी भी नहीं मिल सकी है इसे। यह सजीव व निर्जीव के बीच की दहलीज़ पर है। इस पार वह एक निर्जीव, निस्तेज कण मात्र होता है, वहीं किसी कोशिका में घुसपैठ कर जाए तो जी उठता है।

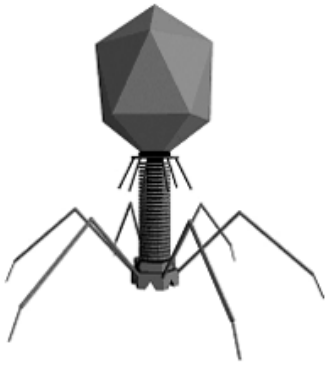

वायरस एक सरल-सा कण है जिसमें न्यूक्लिक अम्ल का मामूली-सा धागा व चारों ओर प्रोटीन का आवरण होता है। सूक्ष्म इतना कि नग्न आंखों से दिखाई ही न दे। मिलीमीटर या सेंटीमीटर तो इसके सामने विशाल हैं। यह महज़ कुछ नैनोमीटर (एक मिलीमीटर का दस लाखवां हिस्सा) का होता है। लेकिन इस अति सूक्ष्म कण ने दुनिया को हिलाकर रख दिया है। यह सच है कि कुछ वायरस अपने मेज़बान के साथ रोगजनक सम्बंध रखते हैं - सर्दी-ज़ुकाम, गंभीर श्वसन रोग से लगाकर मृत्यु शैय्या तक पहुंचा देते हैं।

वायरस को सक्रिय होने के लिए कोई सजीव शरीर चाहिए। वायरस जैसे ही सजीव कोशिकाओं में प्रवेश करता है, कोशिका की कार्यप्रणाली पर अपना कब्ज़ा जमा लेता है और फिर अपने हिसाब से कोशिका को संचालित करने लगता है। वायरस खुद अपने न्यूक्लिक अम्ल की प्रतिलिपियां बनाने लगता है।

लेकिन सभी वायरस खलनायक नहीं होते। कई वायरस तो वाकई में उन बैक्टीरिया को अपना शिकार बनाते हैं जिनके मारे दुनिया में महामारियां आई हैं। प्लेग, तपेदिक, कोढ़, टायफाइड, बैक्टीरियल मेनिन्जाइटिस, निमोनिया इत्यादि प्रमुख बैक्टीरिया-जनित रोग हैं। एक ज़माना था जब इन बीमारियों की वजह से लोग जान गंवा देते थे। अब इन बीमारियों के लिए एंटीबायोटिक दवाइयां उपलब्ध हैं।

लेकिन पिछले कुछ वर्षों में एंटीबायोटिक दवाओं को लेकर समस्याएं बढ़ी हैं। बैक्टीरिया एंटीबायोटिक दवाओं के खिलाफ प्रतिरोधी हुए हैं। बैक्टीरिया इन दवाओं के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर चुके हैं। टीबी के जीवाणु बहु-औषधि प्रतिरोधी हो चुके हैं। ऐसे मरीज़ों का इलाज करना एक बड़ी चुनौती साबित हो रही है।

दुनिया भर में चिंता व्याप्त है कि एंटीबायोटिक के खिलाफ बढ़ते प्रतिरोध के चलते कहीं हम उस दौर में न लौट जाएं जब एंटीबायोटिक थे ही नहीं।

वायरस की दुनिया में एक किस्म के वायरसों को बैक्टीरियोफेज (बैक्टीरिया-भक्षी) कहते हैं। दरअसल, बैक्टीरियोफेज बैक्टीरिया को संक्रमित करते हैं। ये बैक्टीरिया की कोशिका में घुस जाते हैं और उससे अपनी प्रतिलिपियां बनवाते हैं। इसका परिणाम होता है बैक्टीरिया कोशिका की मृत्यु। ये बैक्टीरियोफेज वायरस मुक्त हो जाते हैं और फिर से किसी बैक्टीरिया में घुसते हैं। यह प्रक्रिया चलती रहती है।

हज़ारों प्रकार के बैक्टीरियोफेज मौजूद हैं जिनमें से प्रत्येक प्रकार केवल एक या कुछ ही प्रकार के बैक्टीरिया को संक्रमित कर सकता है। अन्य वायरसों के समान इनकी आकृति भी सरल होती है। इनमें न्यूक्लिक अम्ल होता है जो कैप्सिड नामक आवरण से घिरा होता है।

बैक्टीरियोफेज की खोज 1915 में फ्रेडरिक विलियम ट्वॉर्ट द्वारा चेचक का टीका बनाने की कोशिश के दौरान की गई थी। वे दरअसल, एक प्लेट पर वैक्सिनिया बैक्टीरिया का कल्चर करने में मुश्किल का सामना कर रहे थे क्योंकि प्लेट में बैक्टीरिया वायरस से संक्रमित होकर मर रहे थे। ट्वॉर्ट के ये अवलोकन प्रकाशित हुए मगर प्रथम विश्व युद्ध व वित्तीय बाधाओं के चलते वे आगे इस दिशा में काम नहीं कर सके। 1917 में इस काम को सूक्ष्मजीव वैज्ञानिक फेलिक्स डी हेरेल

ने पेरिस के पाश्चर संस्थान में आगे बढ़ाया। उन्होंने पेचिश के रोगियों को ठीक करने के लिए 'बैक्टीरियोफेज' का उपयोग किया था।

पेरिस के एक अस्पताल में चार मरीज़ *शिगेला* बैक्टीरिया के संक्रमण के कारण पेचिश से पीड़ित थे। इस बीमारी में खूनी दस्त, पेट में ऐंठन व बुखार आता है। उन मरीज़ों को *शिगेला* बैक्टीरिया का भक्षण करने वाले बैक्टीरियोफेज वायरस की खुराक दी गई। आश्चर्यजनक रूप से, एक ही दिन में उन मरीज़ों में बीमारी से उबरने के संकेत मिले।

हेरेल के निष्कर्ष प्रकाशित होने के बाद चिकित्सक रिचर्ड ब्रइनोगे और उनके छात्र मैसिन ने एक बैक्टीरिया की वजह से होने वाले चमड़ी के रोग के उपचार में बैक्टीरियोफेज का उपयोग किया और 48 घंटों के भीतर ठीक होने के स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत किए।

1925 में हेरेल ने प्लेग-पीड़ित चार मरीज़ों का इलाज किया। प्लेग *यर्सिनिया पेस्टिस* नामक बैक्टीरिया की वजह से होता है। जब इसका भक्षण करने वाले बैक्टीरियोफेज का इंजेक्शन लगाया गया तो चारों मरीज़ स्वस्थ हो गए।

जीवाणु संक्रमण से उबरने की सफलता की कहानी ने मित्र में क्वारेंटाइन बोर्ड के ब्रिटिश प्रतिनिधि मॉरिसन का ध्यान खींचा। मॉरिसन ने हेरेल को फेज उपचार पर काम करने के लिए जुड़ने का अनुरोध किया। हेरेल को 1926 में कई अस्पतालों व अनुसंधान संस्थानों के सहयोग से भारत में, इंडियन रिसर्च फंड एसोसिएशन (आईआरएफए) द्वारा फेज उपचार करने के लिए जोड़ा गया। 1927 में यह काम शुरू होकर नौ साल तक चला और 1936 में पूरा किया गया। जो काम था वह प्रदूषित पानी की वजह से हैजे में फेज उपचार के प्रभाव का अध्ययन करना था। अध्ययन के नतीजे उम्मीद जगाने वाले थे। 1927 में एसोसिएशन ऑफ ट्रॉपिकल मेडिसिन के सातवें सम्मेलन में फेज उपचार ने खासा ध्यान आकर्षित किया।

पिछले कुछ वर्षों में बैक्टीरियोफेज पर काफी अनुसंधान हुआ है। बैक्टीरियोफेज बहुकोशिकीय जंतुओं या वनस्पतियों में कोई बीमारी नहीं फैलाते। ऐसे वायरस न केवल मनुष्यों में बल्कि फसलों की बैक्टीरिया-जनित बीमारियों के उपचार में उपयोगी हो सकते हैं।

बैक्टीरिया-जनित बीमारियों में दवाओं के खिलाफ प्रतिरोधक क्षमता एक आम समस्या है। हाल ही में युनाइटेड किंगडम में एक बैक्टीरिया-जनित बीमारी में एंटीबायोटिक दवाओं के प्रति प्रतिरोधक क्षमता पैदा हो जाने की वजह से एक किशोर मौत की कगार पर था। उसका इलाज बैक्टीरियोफेज की मदद से सफलतापूर्वक किया जा सका।

इन दिनों बैक्टीरियोफेज को जेनेटिक इंजीनियरिंग के जरिए इस तरह से बनाया जा रहा है कि वह विशिष्ट बैक्टीरिया को निशाना बना सके।

उपचार के लिए बैक्टीरियोफेज का डोज़ सुविधानुसार या तो मुंह से दिया जा सकता है या फिर घाव पर लगाया जा सकता है या फिर संक्रमित हिस्से पर स्प्रे किया जा सकता है। इंजेक्शन के ज़रिए फेज की खुराक को कैसे दी जाए इस पर परीक्षण चल रहे हैं।

बैक्टीरियोफेज उपचार को लेकर कुछ आस बनती दिखाई दे रही है। कुछ अस्पतालों में वायरस-उपचार के सफल उपयोग के समाचार मिले हैं। बैक्टीरियोफेज वायरसों को पहचानना व एकत्रित करना और उन्हें सहेजकर रखना अब आसान हुआ है।

एक समय पर एंटीबायोटिक दवाओं ने संक्रामक रोगों से बचने में अहम भूमिका अदा की थी और आज भी कर रहे हैं। अब उम्मीद की जानी चाहिए कि बैक्टीरियोफेज से बैक्टीरिया जनित बीमारियों का उपचार इस दिशा में क्रांतिकारी साबित होगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

# सरगम एक प्रागैतिहासिक तोहफा है

**डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन**

पिछले कुछ महीनों में कई समूहों ने इस संदर्भ में कई दिलचस्प शोध प्रकाशित किए हैं कि संगीत मन/मस्तिष्क को कैसे प्रभावित करता है।

पहला शोध पत्र है 1 मार्च को अमेरिका की इंडियाना युनिवर्सिटी के एक समूह द्वारा प्रकाशित अध्ययन। इसमें बताया गया है कि गंभीर रूप से बीमार मरीज़ों को संगीत की मदद से सन्निपात (डेलिरियम) से उबारा जा सकता है (https://doi.org/10.4037/ajcc2020175)। सन्निपात ग्रसित मरीज़ तीव्र मानसिक अशांति, वाणि सम्बंधी दिक्कत और मतिभ्रम का सामना करते हैं। शोधकर्ताओं ने ऐसे 117 रोगियों पर गैर-औषधीय उपचार के रूप में संगीत को आज़माया। उन्होंने इन 117 मरीज़ों में से आधे मरीज़ों को, या तो स्वयं उनके द्वारा चुना गया उनका पसंदीदा संगीत (पीएम), या सुकूनदायक मंद गति का संगीत (एसटीएम) सुनाया। इस प्रायोगिक समूह को एक हफ्ते तक दिन में दो बार एक-एक घंटे के लिए संगीत सुनाया गया और उनके सुधार को दर्ज किया गया। इसकी तुलना उन्होंने तुलना के लिए रखे गए (कंट्रोल समूह) के मरीज़ों से की जिन्हें कोई संगीत नहीं सुनाया गया था।

पाया गया कि जिन मरीज़ों को संगीत (पीएम या एसटीएम, दोनों में से कोई भी) सुनाया गया था उनमें बेहोशी में बड़बड़ाने (सन्निपात) में कमी आई थी। वहीं जब संगीत की बजाय ऑडियो-किताबें सुनाई गईं तो इनसे किसी तरह की मदद नहीं मिली! शोधकर्ताओं ने जो सुकूनदायक संगीत (एसटीएम) चुना था वह या तो 60-80 बीट्स प्रति मिनट वाला शास्त्रीय संगीत, मूल अमेरिकी बांसुरी की धुन, या सुकूनदायक पियानो का संगीत था। संगीत का चयन बोर्ड-प्रमाणित संगीत चिकित्सक द्वारा किया गया था। नतीजों के आधार पर उन्होंने पाया कि गंभीर रूप से बीमार मरीज़ों के लिए संगीत एक उपयोगी गैर-औषधीय मदद है।

इससे कुछ समय पहले चेन्नई के एसएसएन कॉलेज की डॉ. बी. गीतांजलि और उनके सहयोगियों ने *करंट साइंस* में एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिसका शीर्षक था 'उच्च रक्तचाप में संगीत सुनने के असर का मूल्यांकन'। उन्होंने उच्च-रक्तचाप के 200 रोगियों की बेतरतीबी से जांच की, जिसमें उनकी हृदय गति, श्वसन दर और औसत रक्तचाप मापे गए। एक महीने तक संगीत सुनाने के बाद मरीज़ों की हृदय गति, श्वसन दर, और औसत रक्तचाप में कमी देखी गई। अध्ययन में शोधकर्ताओं ने संगीत के साथ-साथ नियमित उपचार जारी रखा था। और राग मलकौंस सुनाया गया था जो कि ओढ़व जाति का राग है (यानी वह राग जिसमें पांच सुर होते हैं), शांति का एहसास कराने वाला और मधुर संगीत था। (जैसा कि हम सभी अपने अनुभव से जानते हैं ऊंचा या तेज़ संगीत और ताल जोश-भरी होती है और उत्तेजित करती हैं)।

लगभग इसी समय हैदराबाद के जाने-माने संगीत चिकित्सक राजम शंकर ने एक पठनीय व अच्छे शोध पर आधारित मोनोग्राफ, 'संगीत की चिकित्सा शक्ति', तैयार किया है। इस मोनोग्राफ में चिकित्सा के लिए इस्तेमाल किए जा सकने वाले रागों का विवरण और कर्नाटक संगीत के 35 से अधिक जाने-माने रागों की विस्तार में जानकारी और कुछ केस स्टडी हैं। इनमें से कुछ राग हिंदुस्तानी संगीत में भी मिलते हैं।

## एकरूप रसास्वादन

इस बात पर गौर करें कि अमेरिका की इंडियाना युनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने अपने अध्ययन में शामिल 'पश्चिमी' सभ्यता के मरीज़ों को वह संगीत सुनाया जिससे वे परिचित थे, और चेन्नई के शोधकर्ताओं ने अपने अध्ययन में मरीज़ों को वह संगीत सुनाया जिससे दक्षिण भारत के लोग परिचित थे। तो सवाल यह उठता है कि क्या भावनाओं को जगाने की संगीत की क्षमता सांस्कृतिक अंतर के परे जा सकती है? मानेसर स्थित नेशनल ब्रेन रिसर्च सेंटर की मस्तिष्क विज्ञानी नंदिनी चटर्जी सिंह ने अपने अध्ययन में इसी सवाल का जवाब खोजने का प्रयास किया है। उनके अध्ययन के नतीजे छह महीने पहले *प्लॉस वन* पत्रिका में प्रकाशित हुए थे (विस्तार से पढ़ने के लिए देखें : https://doi.org/10.1371/journal.pone.0222380)।

चटर्जी सिंह ने अपने अध्ययन में भारत के विभिन्न शहरों के 144 लोगों और अन्य देशों (अमेरिका, ब्रिटेन, युरोप, जापान, कोरिया) के 112 लोगों को हिंदुस्तानी संगीत के 12 रागों के कुछ टुकड़े ऑनलाइन सुनाए। इसमें उन्होंने सरोद पर रागों के आलाप और उसके बाद गत (जिसे बंदिश भी कहते हैं) सुनाई। (आलाप यानी ताल के बिना राग के सुरों और उसकी सप्तक का धीमी गति में परिचय, और गत यानी किसी ताल वाद्य (आम तौर पर तबला) की संगत पर इसी क्रम में राग के सुरों को तीव्र गति से बजाना)। अध्ययन में जब हंसध्वनि जैसे राग बजाए गए तो 'भारतीय संस्कृति से परिचित' भारतीय श्रोताओं और 'भारतीय संस्कृति से अनजान' विदेशी श्रोताओं, दोनों ने 'आनंदित' या 'रोमांटिक' महसूस किया, और जब राग मारवा बजाया गया तो दोनों समूहों ने 'उदासी' की भावना महसूस करना बताया।

संस्कृति से अपरिचित समूह के लोगों ने लयबद्ध हिस्से, गत, पर अधिक सरलता से प्रतिक्रिया दी। शोधकर्ताओं का कहना है कि ये नतीजे कुछ अन्य अध्ययन रिपोर्ट से मेल खाते हैं जिनमें कहा गया है कि अमेरिकी प्रेक्षकों ने तब अधिक प्रतिक्रिया दी जब उन्होंने पारंपरिक भारतीय शास्त्रीय नृत्य देखा। तो ऐसा लगता है कि 'श्रवण' के मामले में एक 'सार्वभौमिकता' है। वे आगे कहते हैं कि जब विदेशियों को जावानी लोगों का संगीत सुनने के लिए आमंत्रित किया गया था तब भी इसी तरह की प्रतिक्रिया मिली थी।

## पैतृक उपहार

तो सवाल यह उठता है कि यह सार्वभौमिकता कैसे आई, और कैसे दुनिया भर के संगीत उन्हीं मूल सुरों और धुनों का उपयोग करते हैं। तो क्या यह डीएनए की तरह हमें जैव-विकास के उपहार स्वरूप मिला है? हम मनुष्यों में संगीत की उत्पत्ति का स्रोत क्या है?

1990 के दशक से 'बायोम्युज़िकेलिटी' नामक एक समूचा विषय उभरा है, जिसमें संगीत की उत्पत्ति का अध्ययन किया जाता है। इसमें यह जानने की कोशिश की जाती है कि संगीत के प्रोसेसिंग में मस्तिष्क का कौन-सा हिस्सा शामिल होता है, और संगीत बनाने की जैविक लागत और उपयोग, और विभिन्न संस्कृतियों के संगीत की साझा विशेषताओं के बारे में पता लगाया जाता है। कुछ शोधकर्ता बताते हैं कि प्रागैतिहासिक काल के मनुष्य उस समय की उपयुक्त सामग्री से ड्रम बजाते थे, जिसे जैव विकास की प्रक्रिया में हमने अपने प्राइमेट बंधुओं से उधार लिया था। कुछ पुरातत्वविदों ने लगभग 4000-5000 साल पहले के प्रागैतिहासिक, पुरा-पाषाण युग के मनुष्यों (निएंडरथल) के संगीत की पड़ताल की है। प्रागैतिहासिक काल का पहला वाद्ययंत्र था बांसुरी जिसे एक युवा भालू की हड्डी से बनाया गया था; स्लोवेनिया में प्राप्त इस खोखली हड्डी से बनी बांसुरी में तीन सुराख थे। हो सकता है, ज़्यादा सुराख रहे हों। एक और बांसुरी चीन के जियाहू क्षेत्र में मिली थी, जिसके आइसोटोप डेटिंग से पता चला कि यह प्रागैतिहासिक काल की उक्त बांसुरी से भी पुरानी (7000-8000 साल पहले की) है। और जब शोधकर्ताओं ने इसे बजाया (शहनाई की तरह खड़ा रखकर) तो जो संगीत पैदा हुआ उसने उन्हें पारंपरिक डो, रे, पा, सो, ला, टी (या सा, रे, गा, मा पा..) की याद दिला दी! ***(स्रोत फीचर्स)***

# पसीना - नैदानिक उपकरण और विद्युत स्रोत

**डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन**

पुराने समय में जब घर में कोई बीमार पड़ता था तो उसका इलाज करने के लिए पारिवारिक चिकित्सक को घर बुलाया जाता था। चिकित्सक सबसे पहले मरीज़ के चेहरे, कनपटी और छाती की त्वचा छूकर देखते थे। यह उन्हें जल्दी बीमारी पता लगाने में मदद करता था। त्वचा छूने पर यदि सामान्य से अधिक गर्म लगती है तो मरीज़ को बुखार है; यदि त्वचा का रंग सामान्य से अधिक फीका है, तो मरीज़ को डिहाइड्रेशन (पानी की कमी) है और उसे अधिक पानी पीने की आवश्यकता है; अगर त्वचा नीली पड़ गई है तो मरीज़ को अधिक ऑक्सीजन की ज़रूरत है; और अगर त्वचा गीली लगती है तो मरीज़ को व्यायाम या शारीरिक श्रम कम करने की ज़रूरत है। फिर वे मरीज़ को उपयुक्त औषधि के रूप में गोलियां, घुटी या इंजेक्शन देते थे।

इसके विपरीत, अब हम मरीज़ को दिखाने के लिए डॉक्टर के क्लीनिक जाते हैं, जहां रोग का पता लगाने के लिए वे मरीज़ को नैदानिक केंद्र (पैथॉलॉजी) भेजते हैं और उसकी रिपोर्ट के आधार पर दवा देते हैं। त्वचा देख-छूकर रोग का पता करना अब बीते ज़माने की बात हो गई है।

वैसे इस समय त्वचा विशेषज्ञ एक दिलचस्प तरीके का उपयोग कर रहे हैं। इस तरीके में वे एक महीन बहुलक-आधारित पट्टी में वांछित औषधि डालते हैं जिसे मरीज़ की बांह या छाती की त्वचा पर चिपका दिया जाता है। फिर इस पट्टी में बहुत हल्का विद्युत प्रवाह किया जाता है, और पसीने के माध्यम से दवा सीधे शरीर में चली जाती है। इस प्रकार यह पहनी जा सकने वाली व्यक्तिगत चिकित्सा तकनीक है जिसमें गोलियां या औषधि नहीं खानी पड़ती। माइक्रोइलेक्ट्रॉनिक और जैव-संगत पोलीमर के आने से आज हमारे पास "इलेक्ट्रॉनिक त्वचा" (ई-त्वचा) है, नैनोवायर की मदद से इसे त्वचा पर जोड़ा जा सकता है और माइक्रो बैटरी की मदद से इसमें विद्युत प्रवाहित की जा सकती है।

## पसीने की भूमिका

गौर करेंगे तो देखेंगे कि इसमें हमारे शरीर के सक्रिय तरल यानी पसीने को नज़रअंदाज कर दिया गया है या इसे महज एक अक्रिय वाहक के रूप में देखा जा रहा है जिसकी कोई अन्य भूमिका नहीं है। यह हाल ही में हुआ है कि हमारे शरीर में पसीने की भूमिका और इसमें मौजूद रसायनों के बारे में हमारी समझ और इसका इस्तेमाल बढ़ा है। पसीना हमारी पूरी त्वचा में वितरित तीन प्रकार की ग्रंथियों से निकलता है। ये ग्रंथियां पानी और कई अन्य पदार्थों को स्रावित करके हमारे शरीर के तापमान को 37 डिग्री सेल्सियस (या 98.4 डिग्री फैरनहाइट) बनाए रखने में मदद करती हैं। हमारे मस्तिष्क में तापमान-संवेदी तंत्रिकाएं (न्यूरॉन्स) होती हैं, जो शरीर के तापमान और चयापचय गतिविधि का आकलन करके पसीना स्रावित करने वाली ग्रंथियों को नियंत्रित करती हैं। इस तरह पसीना हमारे शरीर के तापमान को नियंत्रित रखता है।

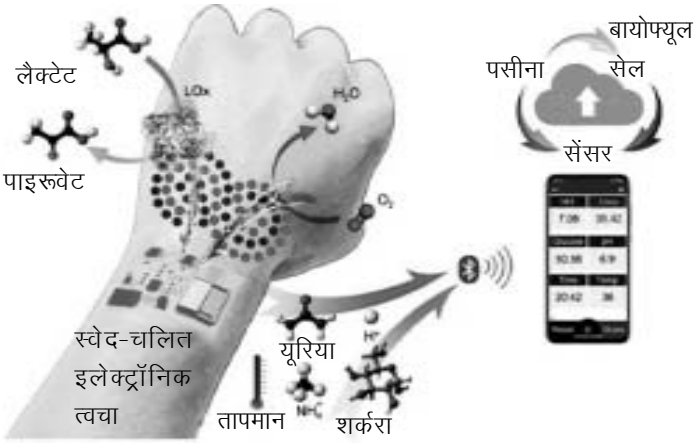


पसीने में क्या होता है? यह 99 प्रतिशत पानी होता है जिसमें सोडियम, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम और क्लोराइड आयन, अमोनियम आयन, यूरिया, लैक्टिक एसिड, ग्लूकोज़ जैसे अन्य पदार्थ होते हैं। किसी मरीज़ के पसीने में मौजूद पदार्थों के विश्लेषण और इसकी तुलना एक सामान्य व्यक्ति के पसीने करें, तो पसीना एक नैदानिक

तरल हो सकता है (ठीक उसी तरह जिस तरह शरीर के अन्य तरल पदार्थ होते हैं)। जैसे, सिस्टिक फाइब्रोसिस बीमारी में मरीज़ के पसीने में सोडियम और क्लोराइड आयनों का अनुपात और सामान्य व्यक्ति के पसीने में सोडियम और क्लोराइड आयनों का अनुपात अलग-अलग होता है। इसी तरह डायबिटीज़ के रोगी के पसीने में ग्लूकोज़ की मात्रा सामान्य व्यक्ति से अधिक होती है। लेकिन इन नैदानिक तरीकों में समस्या पसीने की मात्रा की है।

## ई-त्वचा आधारित निदान

यहां आधुनिक तकनीक का महत्व सामने आता है। अब माइक्रोइलेक्ट्रॉनिक और ई-त्वचा पट्टी दोनों उपलब्ध हैं। वैज्ञानिक इनका उपयोग पट्टी में लगे उपयुक्त संवेदियों की मदद से, पसीना निकलने के वक्त ही उसमें मौजूद में कुछ चुनिंदा पदार्थों की मात्रा का पता लगाने में कर रहे हैं। लेकिन क्या यह बेहतर नहीं होगा कि हम ई-त्वचा पट्टी पर एक की बजाए कई पदार्थों की जांच के लिए सेंसर लगाकर, एक साथ कई जांच कर पाएं?

इस बारे में कैलिफोर्निया के जीव विज्ञानी, भौतिक विज्ञानी, कंप्यूटर विशेषज्ञ और इलेक्ट्रिकल इंजीनियरों द्वारा एक महत्वपूर्ण अध्ययन 2016 में *नेचर* पत्रिका प्रकाशित हुआ था। इसमें उन्होंने ई-त्वचा पट्टी पर एक नहीं बल्कि छह सेंसर जोड़े थे जो सोडियम, पोटेशियम, क्लोराइड आयन, लैक्टेट और ग्लूकोज़ की मात्रा और पसीने का तापमान पता करते हैं। ये सेंसर इस तरह लगाए गए थे कि सेंसर और त्वचा के बीच हमेशा संपर्क बना रहे। प्रत्येक सेंसर से आने वाले विद्युत संकेतों को डिजिटल संकेतों में परिवर्तित किया जाता है और माइक्रो-नियंत्रक को भेजा जाता है। इन संकेतों को ब्लूटूथ की मदद से मोबाइल फोन या अन्य स्क्रीन पर पढ़ा जा सकता है, या एसएमएस, ईमेल के ज़रिए किसी को भेजा जा सकता है या क्लाउड इंटरफेस पर अपलोड भी किया जा सकता है।

2017 में इन्हीं शोधकर्ताओं ने *प्रोसिडिंग्स ऑफ दी नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेस* में एक और पेपर प्रकाशित किया था। चूंकि एक जगह स्थिर रहने वाले (या गतिहीन) लोगों में प्राकृतिक रूप से पसीना बहुत कम निकलता है इसलिए शोधकर्ताओं ने आयनटोफोरेसिस नामक तरीके का उपयोग किया। इसमें वांछित स्थान को पसीना स्रावित करने के लिए उत्तेजित किया जा सकता है और पर्याप्त मात्रा में पसीना प्राप्त किया जा सकता है। फिर किसी सामान्य व्यक्ति और सिस्टिक फाइब्रोसिस वाले व्यक्तियों में सम्बंधित पदार्थों का विश्लेषण किया और पसीने में ग्लूकोज के स्तर को भी देखा। जांच के लिए प्रयुक्त शीट उनके द्वारा पूर्व में उपयोग की गई एकीकृत शीट जैसी थी। अध्ययन में उन्होंने पाया कि एक सामान्य व्यक्ति में प्रति लीटर 26.7 मिली मोल सोडियम आयन और 21.2 मिली मोल क्लोराइड आयन होते हैं (ध्यान दें कि यहां सोडियम आयन का स्तर क्लोराइड आयन के स्तर से अधिक है), जबकि सिस्टिक फाइब्रोसिस के रोगी में सोडियम आयन का स्तर 2.3 मिली मोल और क्लोराइड आयन का स्तर 95.7 मिली मोल था (जो सोडियम आयन की अपेक्षा कहीं अधिक है)। ध्यान रहे कि सिस्टिक फाइब्रोसिस विशेषज्ञों द्वारा किए जाने वाली सामान्य जांच में भी यही नतीजे मिलते हैं। शोधकर्ताओं ने यह भी पाया कि उपवास के दौरान ग्लूकोज़ पीने पर पसीने और रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है।

गौरतलब है कि इन सब परीक्षणों में, प्रोब और सेंसरों को संचालित करने के लिए माइक्रोबैटरी की मदद से विद्युत प्रवाहित करने की आवश्यकता पड़ती है। यदि इन ई-त्वचा का रोबोटिक्स और अन्य उपकरणों में उपयोग करना है, तो क्या हम इन बैटरियों से निजात पा सकते हैं, और पसीने में मौजूद पदार्थों का उपयोग विद्युत उत्पन्न करने वाले जैव ईंधन

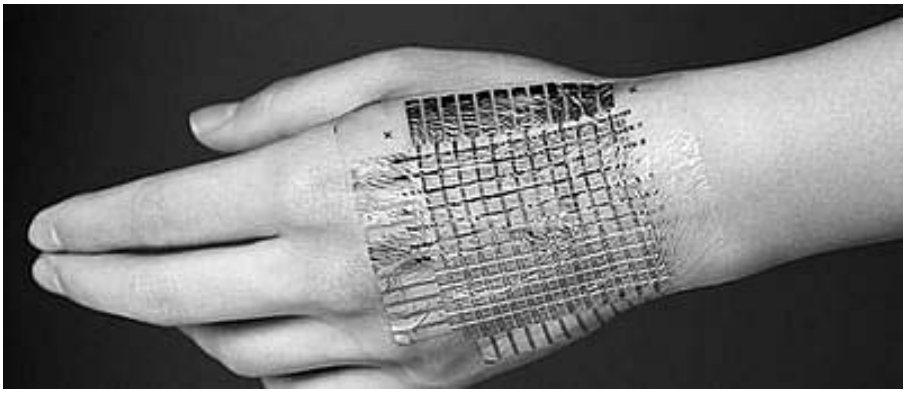

के रूप में कर सकते है?

कुछ दिनों पहले *साइंस रोबोटिक्स* में प्रकाशित शोध इसी सवाल का जवाब देता है। इस अध्ययन में शोधकर्ताओं ने लोगों की ई-त्वचा पट्टी पर लॉक्स एंज़ाइम जोड़ा। यह लॉक्स एंज़ाइम पसीने में मौजूद लैक्टेट के साथ क्रिया करता है और इसे एक बायोएनोड (जैविक धनाग्र) पर पायरुवेट में ऑक्सीकृत कर देता है, और एक बायोकेथोड (जैविक ऋणाग्र) पर ऑक्सीजन को पानी में अवकृत कर देता है। इस प्रकार उत्पन्न विद्युत ऊर्जा, बिना किसी बाहरी स्रोत के, ई-त्वचा पट्टी को संचालित करने के लिए पर्याप्त होती है - क्या शानदार तरीका है!

और अंत में, कोविड-19 संक्रमण के दिनों में यह जानना लाभप्रद है कि पसीने में कोई भी रोगजनक (बैक्टीरिया या वायरस) नहीं होता; इसके उलट इसमें एक कीटाणु-नाशक प्रोटीन होता है जिसे डर्मसीडिन कहते हैं। हो सकता है कि डर्मसीडिन या इसका संशोधित रूप एंटी-वायरस की तरह काम कर जाए। ***(स्रोत फीचर्स)***

**वर्ग पहेली 188 का हल**

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1क्लो | रो | क्वी | 2न | | 3स | 4जा | ती | 5य |
| रो | | | ल | | | र | | म |
| फि | | 6ज | | 7प | त | वा | 8र | |
| 9ल | क | ड़ | हा | रा | | | 10ग | ज |
| | | त्व | | स | | 11आ | | |
| 12था | 13र | | | 14र | सा | स्वा | द | 15न |
| | 16वि | 17स | र | ण | | न | | स |
| 18छ | | ह | | | 19फ | | | वा |
| 20वि | कि | र | ण | | 21न | भ | च | र |

# नर लीमर अपनी पूंछ से 'प्रेम रस' फैलाते हैं

**रो**एंदार पूंछ और पूंछ पर काले-भूरे छल्लों की खासियत वाले लीमर अपने नर प्रतिद्वंदी को दूर रखने के लिए पूंछ झटकने की अजीबो-गरीब आदत के लिए जाने जाते हैं। *करंट बायोलॉजी* में प्रकाशित एक ताज़ा अध्ययन बताता है कि प्रजनन काल में नर लीमर पूंछ झटककर अपनी संभावित मादा साथी को आमंत्रण देने के लिए गंध फैलाते हैं।

वैसे तो अधिकांश कीट मादा को रिझाने या आकर्षित करने के लिए गंध युक्त रसायन स्रावित करते हैं जिन्हें फेरोमोन कहते हैं। ऐसा ही व्यवहार चूहों में भी देखा गया है। लेकिन टोक्यो युनिवर्सिटी के बायोकेमिस्ट काज़ुशिगे तोहारा जानना चाहते थे कि क्या प्राइमेट्स (जिसमें मनुष्य भी शामिल हैं) भी ऐसा ही व्यवहार करते हैं?

मैडागास्कर में पाए जाने वाले लीमर (*Lemur catta*) अन्य प्राइमेट्स से थोड़े भिन्न होते हैं। नर लीमर की कलाई पर ग्रंथियां पाई जाती हैं जो फेरोमोन की तरह गंधयुक्त रसायन स्रावित करती हैं। ये रसायन हवा के संपर्क में आने पर वाष्प बन कर उड़ जाते हैं। गंध के वाष्प बन कर उड़ने के पहले ही लीमर अपनी पूंछ को कलाई से रगड़ लेते हैं और फिर पूंछ झटककर अपनी गंध फैलाते हैं। साल के अधिकांश समय तो लीमर कड़वी व चमड़े जैसी गंध वाले रसायन

स्रावित करते हैं ताकि अन्य नर इनसे दूर रहें। लेकिन प्रजनन काल में ये एक मीठी-सी महक छोड़ते हैं।

अपने अध्ययन में शोधकर्ताओं ने लीमर्स की कलाई की ग्रंथियों से स्रावित रसायन को एकत्रित किया और उसमें मौजूद घटकों का पता लगाया। विश्लेषण में उन्होंने पाया कि स्रावित रसायन में मादा को आकर्षित करने के लिए तीन घटक ज़िम्मेदार हैं और तीनों ही घटक एल्डिहाइड हैं, जो कई तरह की गंध के लिए ज़िम्मेदार होते हैं। इनमें से एक घटक कीटों द्वारा मादा को आमंत्रित करने के लिए स्रावित किया जाने वाला फेरोमोन है और दूसरे घटक की गंध नाशपाती जैसी है।

शोधकर्ताओं ने यह भी पाया कि मादाएं सिर्फ प्रजनन काल में और तीनों रसायन के उपस्थित होने पर ही इन गंध के स्थान को सूंघती या चाटती हैं। जिससे लगता है कि यह गंध प्रजनन काल में लीमर को साथी ढूंढने में मदद करती है। इसके अलावा शोधकर्ताओं ने देखा कि जिस नर में जितना अधिक टेस्टोस्टेरोन होता है, गंध उतनी ही अधिक मीठी होती है।

युनिवर्सिटी ऑफ विस्कॉन्सिन के मनोवैज्ञानिक चार्ल्स स्नोडाउन बताते हैं कि इसमें खास बात यह है कि अधिकतर फेरोमोन में एक ही रसायन होता है जबकि लीमर्स द्वारा उत्सर्जित फेरोमोन में तीन तरह के रसायन मौजूद हैं और महत्व तीनों के मिश्रण का है। हालांकि यह अध्ययन बहुत सीमित समूह पर किया गया है और अध्ययन का अधिकांश डैटा एक ही नर लीमर से प्राप्त हुआ है इसलिए इसका सम्बंध प्रजनन से पक्का नहीं है। बहरहाल यह अध्ययन इस सवाल की ओर ध्यान दिलाता है कि क्या गंध प्राइमेट्स में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ***(स्रोत फीचर्स)***

इस अंक के चित्र निम्नलिखित स्थानों से लिए गए हैं -

Page 12 - https://pbs.twimg.com/media/EVWkpvLXQAAqsFF.png
Page 26 - https://miro.medium.com/max/440/1*slzHlWMvk74xEldm5smt6Q.jpeg
Page 28 - https://www.mdpi.com/viruses/viruses-12-00005/article_deploy/html/images/viruses-12-00005-g001.png
Page 29 -https://encrypted-tbn0.gstatic.com/images?q=tbn%3AANd9GcSKAVUbz4zizsY3dBN9KLO0r7GD18TUJiLf786otOE0Glwm6-1W&usqp=CAU
Page 30 - https://i.ytimg.com/vi/YI3tsmFsrOg/maxresdefault.jpg
Page 32 - https://encrypted-tbn0.gstatic.com/images?q=tbn%3AANd9GcQkJnISLinkUCBAVOIk1ozMKq8K3QZESiIUn1oDyydIgOdrTPBt&usqp=CAU
Page 33 - https://www.allaboutcircuits.com/uploads/thumbnails/Perspiration-powered_electronic_skin.jpg
Page 34 - https://assets.thehansindia.com/hansindia-bucket/E_Skin_6560.jpg?w=400&dpr=1.0
Page 35 - https://i.pinimg.com/originals/a8/4e/4b/a84e4bcacfb42c9dfb1fbb3f6210d81e.jpg
Page 37 - https://thumbs-prod.si-cdn.com/wj9yx1RAc9qP1mPmYuv4BEBD3vE=/800x600/filters:no_upscale()/https://public-media.si-cdn.com/filer/29/ee/29ee54e4-2723-4d2b-af3c-9bc34b83cb01/ap_18061690891121.jpg


**विज्ञान से जुड़ी नवीनतम जानकारी के लिए**

**स्रोत का फेसबुक पेज लाइक करें**

https://www.facebook.com/srote.magazine/

# क्या सफेद अफ्रीकी गैंडों का अस्तित्व बचेगा?

*- डॉ. विपुल कीर्ति शर्मा*

20वीं शताब्दी की शुरुआत तक लगभग 5 लाख गैंडे एशिया और अफ्रीका में घूमते थे। कई दशकों से लगातार हो रहे शिकार और प्राकृतिक आवास के नष्ट होने से सभी राष्ट्रीय उद्यानों में भी गैंडों की संख्या बेहद कम हो चुकी है।

अफ्रीका के पश्चिमी काले गैंडे और उत्तरी सफेद गैंडे हाल के वर्षों में जंगल से विलुप्त हो गए हैं। गैंडों के संरक्षण में जुटे वैज्ञानिकों और अन्य कार्यकर्ताओं को तब झटका लगा जब केन्या के एक संरक्षण स्थल पर 24 घंटे गार्ड की निगरानी में रखे गए अंतिम तीन उत्तरी सफेद गैंडों में से एक 44 वर्ष की आयु में मर गया। शोधकर्ताओं की अंतर्राष्ट्रीय टीम अनेक वर्षों से इन गैंडों को प्रजनन कराने का भरसक प्रयास कर रही थी। कुछ समय पहले ही इन विट्रो-निषेचन की तकनीक से गैंडे के दो अंडाणुओं को प्रयोगशाला में सफलता पूर्वक निषेचित करने से वैज्ञानिकों ने गैंडों को बचाने के लिए एक बार फिर उम्मीद जगा दी है।

ऐसा माना जाता है कि अफ्रीका के उत्तरी सफेद गैंडे 2007-08 में जंगलों से विलुप्त हो चुके थे। इन गैंडों की एक छोटी-सी आबादी चिड़ियाघरों में ही शेष बची थी। परंतु समस्या यह थी कि चिड़ियाघर में बचे गैंडे किसी कारण से प्रजनन करने में सक्षम नहीं थे। 2014 में बचे शेष तीन उम्रदराज़ गैंडों में से अकेला नर भी मर गया। नर के मर जाने के पूर्व भी दोनों मादाओं को प्राकृतिक तथा कृत्रिम तरीके से गर्भधारण करने के लिए प्रोत्साहित किया गया पर नतीजा शून्य रहा। इसी वर्ष अगस्त माह में वैज्ञानिकों ने दोनों बची हुई मादाओं से 10 अंडाणु शरीर के बाहर निकालने में सफलता प्राप्त की। मरने के पूर्व नरों से एकत्रित किए गए शुक्राणुओं के द्वारा अंडों को निषेचित किया जा सकता है। योजना के अनुसार दोनों मादा गैंडों से कुल 10 अंडाणु प्राप्त किए गए।

क्रेमोना, इटली में स्थित एवांटिया प्रयोगशाला के इस कार्य से जुड़े एक वैज्ञानिक ने बताया कि 10 में से केवल 7 अंडाणु ही शुक्राणु द्वारा निषेचन के लिए उपयुक्त पाए गए। अंत में केवल दो अंडाणु भ्रूण में बदले। दोनों भ्रूणों को भविष्य में उपयुक्त मादा गैंडों में प्रत्यारोपित करने के पूर्व बर्फ में जमा कर संरक्षित कर लिया गया है। यद्यपि भ्रूण को सरोगेट मां में स्थापित कर जन्म तक देखभाल करने की तकनीक मनुष्यों में बेहद सामान्य हो गई है परंतु गैंडे में इस प्रकार के प्रयोग पहली बार किए जा रहे हैं। वैज्ञानिक सरोगेट मां के रूप में स्वस्थ दक्षिणी सफेद मादा को भी खोज रहे हैं। वैज्ञानिकों के पास दो भ्रूण संरक्षित हैं।

गैंडों में भ्रूण प्रत्यारोपण एक बेहद कठिन कार्य है। आशा करते हैं कि वैज्ञानिकों के प्रयास से गैंडे की प्रजाति को बचाया जा सकेगा। यद्यपि उत्तरी सफेद गैंडों की पूरी तरह वापसी के लिए उपरोक्त प्रयोगों को कई बार दोहराने की ज़रूरत होगी। वैज्ञानिकों के पास केवल दो बूढ़ी गैंडा मादाएं शेष हैं जिनसे अभी और अंडाणु प्राप्त किए जा सकते हैं। केवल चार नरों से प्राप्त शुक्राणुओं की उपलब्धि के कारण आनुवंशिक विविधता बहुत कम रह गई है। यदि मृत गैंडों की जमी हुई (फ्रोज़न) कायिक कोशिकाओं के जीन्स को भी मिला लिया जाए तो जीन समूह 12 गैंडों का हो जाता है। अगर इन मृत गैंडों की संग्रहित जीवित स्टेम कोशिकाओं को प्रेरित कर अंडाणुओं और शुक्राणुओं में बदल दिया जाए तो काम और आसान हो जाएगा। वैज्ञानिक जुटे हुए हैं और आशा करें कि एक दिन उत्तरी सफेद गैंडे का शिशु पुन: दौड़ता दिखेगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स
RNI REG. NO: MPHIN/2007/20200

# सूरज उत्तर-दक्षिण में क्यों डोलता है?

सूरज, चांद, तारे हमेशा से कौतूहल का विषय रहे हैं। हर सभ्यता में लोगों ने इनका अवलोकन करके पैटर्न बनाने की कोशिश की है। सदियों से लोग परछाइयां दे खकर समय का अनुमान लगाने की कोशिश करते रहे हैं क्योंकि परछाई से अंदाज़ लगाया जा सकता है कि आकाश में सूरज कहां है। एक छड़ी की मदद से हम सूरज की गति का अच्छा अंदाज़ लगा सकते हैं। यूनान में एरेटोस्थेनीज नामक वैज्ञानिक ने तो एक छड़ी की मदद से घर बैठे पृथ्वी को नाप लिया था। तो छड़ी के कुछ प्रयोग आप भी करें। अगले कुछ अंकों में हम आकाश की टोह लेने के ऐसे कुछ आसान प्रयोग सुझाएंगे, जिन्हें करके मज़ा भी आएगा और शायद समझ भी बढे।

हमने देखा कि सूरज मोटे तौर पर पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होता है लेकिन रोज़ाना वह ठीक पूर्व से नहीं निकलता और न ही ठीक पश्चिम में अस्त होता है। साल भर एक ही समय पर सूरज का अवलोकन करें तो पता चलता है कि छ: महीने वह रोज़ाना थोड़ा उत्तर की ओर खिसक जाता है और फिर अगले छ: महीने दिन-ब-दिन दक्षिण की ओर सरकता नज़र आता है। जिन छ: माह सूरज आकाश में उत्तर की ओर गति करना दिखता है, उसे उत्तरायण कहते हैं और शेष छ: माह सूरज दक्षिणायन कहलाता है। सवाल यह है कि ऐसा क्यों होता है।

यह तो अब सभी मानते हैं कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है और सूर्य के चक्कर भी लगाती है। अपनी धुरी पर पृथ्वी की गति को घूर्णन कहते हैं और दिन-रात इसी की वजह से होते हैं। सूर्य के आसपास चक्कर लगाने को परिक्रमा कहते हैं। परिक्रमा के पथ की बनावट अंडाकार है। पृथ्वी इस प्ररिक्रमा पथ पर साल भर में एक चक्कर पूरा करती है। एक खास बात यह है कि पृथ्वी की अक्ष इस परिक्रमा पथ के एकदम लंबवत नहीं है। पाठयपुस्तकों में बताया जाता है कि पृथ्वी की धुरी लगभग 23 अंश झुकी हुई है। इसका मतलब यह है कि यदि परिक्रमा पथ के तल से एक खड़ी रेखा खींचें तो पृथ्वी की अक्ष इस रेखा से 23 अंश का कोण बनाती है। साल भर में आसमान सूर्य का दक्षिण से उत्तर और उत्तर से दक्षिण की ओर विचलन अक्ष के इसी झुकाव की वजह से होता है। इसके कारण हम पृथ्वी से सूरज को अलग-अलग कोण से देखते हैं और यह कोण साल भर बदलता रहता है।

आसमान में सूर्य उत्तर में अधिकतम जिस रेखा तक जाता है उस रेखा को नाम दिया गया है मकर रेखा। इसी प्रकार से दक्षिण में अधिकतम विचलन रेखा को कर्क रेखा नाम दिया गया है। सूर्य कर्क और मकर रेखाओं के बीच डोलता दिखता है। और इसका कारण पृथ्वी के अक्ष का झुकाव है।

*देखिए सूर्यास्त कैसे उत्तर की ओर सरक रहा है।*

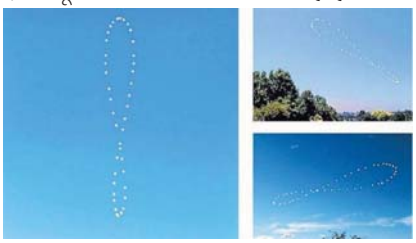
*यदि रोज़ाना एक ही समय पर सूर्य का फोटो खींचा जाए, तो साल भर में आपको ऐसा पैटर्न दिखेगा, इसे एनालेमा कहते हैं। वैसे आप खुद सूरज का फोटो न खींचे तो ही बेहतर है।*

*पृथ्वी का अंडाकार कक्षा और अक्ष के झुकाव का मिला-जुला परिणाम है एनालेमा। इसका एक पिंड छोटा और दूसरा बड़ा होता है।*
*यदि सूरज का फोटो रोज़ाना मध्यान्ह के समय खींचा जाए तो एनालेमा एकदम लंबवत बनेगा। मध्यान्ह से पहले और बाद में एनालेमा थोड़ा झुका हुआ दिखेगा।*

प्रकाशक, मुद्रक अरविन्द सरदाना की ओर से निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन
द्वारा एकलव्य, जमनालाल बजाज परिसर, फॉर्च्यून कस्तूरी के पास, जाटखेड़ी
रोड, जाटखेड़ी, भोपाल, म. प्र.
पिन - 462 026 से प्रकाशित तथा
आदर्श प्राइवेट लिमिटेड, इंदिरा प्रेस कॉम्पलेक्स, एम.पी. नगर, ज़ोन-1 भोपाल
(म.प्र.) 462011 से मुद्रित। सम्पादक: डॉ. सुशील जोशी